

कल्याण

मूल्य ८ रुपये



वर्ष
८९

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
४



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका स्वरूप

सत्ययुगके भगवान्का ध्यान

त्रेतायुगके भगवान्का ध्यान



द्वापरके भगवान्का ध्यान

कलियुगके भगवान्का ध्यान

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः ।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः ॥

वर्ष

८९

गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, अप्रैल २०१५ ई०

संख्या

४

पूर्ण संख्या १०६१

चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका ध्यान

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः ।

कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद् दण्डकमण्डलू ॥

सत्ययुगमें भगवान्का श्वेत वर्ण होता है, वे चार भुजाएँ, सिरपर जटा, वल्कल वस्त्र, काले मृगका चर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्षकी माला, दण्ड और कमण्डलु धारण करते हैं ।

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ।

हिरण्यकेशश्चय्यात्मा सुकुम्बुवाद्युपलक्षणः ॥

त्रेतायुगमें उन भगवान्का रंग लाल होता है, वे चार भुजाएँ धारण करते हैं । उनके केश सुनहले होते हैं और वे वेदप्रतिपादित यज्ञके रूपमें रहकर सुक्, सुवा आदि यज्ञपात्रोंको धारण करते हैं ।

द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः ।

श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥

हे राजन्! द्वापरयुगमें भगवान्का रंग साँवला होता है । वे पीताम्बर और शंख, चक्र आदि आयुध धारण करते हैं । वक्षःस्थलपर श्रीवत्स आदि चिह्नों और अनेक लक्षणोंसे वे पहचाने जाते हैं ।

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।

यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥

कलियुगमें काले रंगकी कान्तिसे, अंगों और उपांगों; अस्त्रों एवं पार्षदोंसे युक्त श्रीकृष्णकी श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न पुरुष यज्ञोंके द्वारा और प्रधान रूपसे नाम-कीर्तन आदिके द्वारा आराधना करते हैं । [श्रीमद्भागवत, एकादश स्कन्ध]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २, १५, ०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, अप्रैल २०१५ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका ध्यान	३	११- साधन-सूत्र (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)	२५
२- कल्याण	५	१२- वृद्धजनोंके प्रति युवाओंका कर्तव्य (श्रीइन्द्रमलजी राठी)	२७
३- सेवा, जप, ध्यान, प्रेम तथा व्याकुलता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६	१३- सबमें आत्मभाव	२८
४- संसार-जय (पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार, एम०ए०) ...	१०	१४- हमारी प्राचीन वैमानिक-कला (श्रीदामोदरजी झा, साहित्याचार्य)	२९
५- पतनोन्मुख मानव-समाजकी रक्षा कैसे हो ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२	१५- एक पलके सत्संगसे प्रभुप्राप्ति (डॉ० श्रीभीकमचन्द्रजी प्रजापति)	३२
६- उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् (डॉ० श्रीशिवेन्द्रप्रसादजी गर्ग, 'सुमन')	१६	१६- समाजकी सेवा [कहानी] (श्री 'चक्र')	३६
७- दूसरोंकी निन्दा किसी हालतमें न करो	१८	१७- साधनोपयोगी पत्र	४१
८- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१९	१८- आवरणचित्र-परिचय	४२
९- 'भावे हि विद्यते देवः' (दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी सरस्वती)	२२	१९- व्रतोत्सव पर्व [ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व]	४३
१०- सन्त-उद्बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	२४	२०- कृपानुभूति	४४
		२१- पढ़ो, समझो और करो	४५
		२२- मनन करने योग्य	४८
		२३- पूर्ण गोहत्या-बन्दीकी दिशामें महाराष्ट्रका एक कदम (—राधेश्याम खेमका)	५०

चित्र-सूची

१- श्रीभरतजीद्वारा श्रीरामचरणपादुकाओंका पूजन	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका स्वरूप	(")	मुख-पृष्ठ
३- क्षमाशील संत	(इकरंगा)	१६
४- युधिष्ठिर और यक्ष	(")	१७
५- मन्थरा और कैकेयी	(")	२५

एकवर्षीय शुल्क

अजिल्द ₹ २००

सजिल्द ₹ २२०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय ॥

जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥

जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

विदेशमें Air Mail }
सजिल्द शुल्क }

वार्षिक US\$ 45 (₹ 2700)
पंचवर्षीय US\$ 225 (₹ 13500)

{ Us Cheque Collection
{ Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

अजिल्द ₹ १०००

सजिल्द ₹ ११००

संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक — डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

☎ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें ।

Online सदस्यता-शुल्क भुगतान हेतु gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें ।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें ।

‘शिव’

जिसे भजन प्रिय लगता है, वह उसे छोड़ना नहीं चाहता। यदि भूल जाता है और भूलनेपर उसे पश्चात्ताप होता है तो ऐसी स्थितिमें समझना चाहिये कि उसकी भजनमें श्रद्धा और रुचि कुछ विशेष है। भजन करनेवालेको भजन करते समय शान्ति और प्रसन्नता मालूम देती है और वह यह चाहता है कि मेरा भजन सदा बना रहे, फिर भी कभी-कभी भूल हो जाती है। इस अवस्थामें भजनमें और भगवान्में प्रीति, रुचि और श्रद्धा मुख्य है। इससे भी बढ़कर बात यह है कि उससे भजन छूटता ही नहीं और छूटनेसे बड़ी भारी व्याकुलता हो जाती है। वह भूलको बर्दाश्त नहीं कर सकता और बहुत ही दुःखित-सा हो जाता है। इस दशामें उसकी भगवान्में श्रद्धा, रुचि और प्रीति विशेष समझी जाती है अथवा यह कह सकते हैं कि तीव्र समझी जाती है या अनन्यकी तरह समझी जाती है। इससे भी जो बढ़कर है, वहाँ तो भूल हो ही नहीं सकती। वह तो भगवान्से भी बढ़कर भगवान्के भजन और ध्यानको समझता है। एक तरफ भगवान् मिलना चाहते हैं और दूसरी तरफ भजन-ध्यान छोड़ना पड़ता है तो उसका यह भाव रहता है कि 'मैं भजन-ध्यान नहीं छोड़ सकता, भगवान् चाहे'।

मिले या न मिले। उसको भगवान्में रुचि, प्रीति और

जितनी बार शब्द सुनता है, उतनी ही बार उसके साथ भगवान्‌के नामका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। आगे जाकर उसे भगवन्नामकी ध्वनि प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगती है। इस प्रकार जप मनसे ही सम्बन्ध रखता है। मन यदि नहीं रहेगा तो नाम सुनेगा ही नहीं। इसी प्रकार नाड़ीके द्वारा जप होता है। योगशास्त्रमें बतलाया गया है कि सुषुम्ना नाड़ी हृदयसे लेकर मस्तकतक है। हृदयमें एकाग्र होकर ध्यान करनेसे वह नाड़ी चलती दीखती है। मस्तक, भृकुटि तथा कण्ठमें भी विशेष ध्यान देनेसे वह नाड़ी दिखायी देती है। उसकी चाल तेज करनेसे वह स्पष्टरूपसे दीखने लग जाती है। यह भी एक प्रकारसे मानसिक जप है। जैसे कोई 'राम'-नामका उपासक है, वह 'रा' और 'म' को दीवालपर लिखकर अपने मनसे उसे बार-बार पढ़ रहा है, 'रा' और 'म' को मनसे देख रहा है, भगवान्‌के नामका स्मरण कर रहा है, मनसे नामका चिन्तन कर रहा है तो यह भी मानसिक जप है। जो अपने उपास्य देव हैं—जैसे कोई भगवान् रामका ही ध्यान करता है, रामके नामका ही जप करता है, भगवान् रामके ललाटपर या भगवान् रामके मुकुटपर चन्दनसे भगवान्‌का नाम लिखकर उसे देखता रहता है। यह और भी बढ़कर है।

जो निराकारका उपासक है, साकारका उपासक नहीं है, उसके द्वारा भगवान्‌के निराकार-वाचक नामों—जैसे ‘ॐ, तत्, सत्’ ‘अनन्त’, ‘राम’ आदिका स्मरण मनके संकल्पसे होता है। जैसे मनमें बहुत-सी बातें याद आती रहती हैं, उनका संकल्प होता है, उन्हें वाणीसे थोड़े ही बोल सकता है। श्वासोंसे थोड़े ही इस प्रकारसे कहता है कि मनमें इसकी स्मृति होती है, चिन्तन होता है, याद आती है। इस तरह भगवान्‌के नामकी जो बार-बार स्मृति होती रहती है, यह मानसिक स्मरण है। इस प्रकार मानसिक स्मरण करके जो न किसीसे कहता है, न किसीको जनाता है, न संकेत करता है, न यह बात दिखलाता है, गुप्त-भावसे करता है, यह और भी उत्तम है। इस प्रकार गुप्त भावसे नाम-स्मरण करता हुआ

नामके साथ-साथ नामीको भी याद कर लेता है। जैसे भगवान् रामके साकार रूपका उपासक भगवान् रामके मुखारविन्दके ऊपर, गालके ऊपर, मस्तकके ऊपर, ललाटेके ऊपर, कानोंके पास—चारों तरफ सब जगह भगवान्का नाम लिखकर भगवान् रामको साथ-साथ देखता रहता है, नामका जप भी मनसे करता रहता है और भगवान्के मुखारविन्दको भी देखता रहता है। इस प्रकार ये दोनों बातें एक साथ हो रही हैं। जप भी हो रहा है, ध्यान भी हो रहा है। जैसे भगवान् रामके मुखारविन्दपर चन्दनसे 'राम-राम' अंकित है, उसे वह स्वयं याद कर रहा है, मनसे स्मरण कर रहा है और मुखारविन्दको भी देख रहा है। उसका यह भाव है कि भगवान् नेत्र ढकते हैं, उनसे भी भगवान्के नामका उच्चारण होता है और खोलते तथा बन्द करते समय भी भगवान्के नामका उच्चारण होता है, मानो भगवान्की आँखें भी 'राम-राम' का उच्चारण कर रही हैं। जैसे मुख खिल गया तो उस समय 'रा' का उच्चारण हुआ और मुख बन्द हुआ तो उसमेंसे 'म' का उच्चारण हुआ यानी मुख भी 'राम-राम' उच्चारण कर रहा है। भगवान् बोलते हैं या हँसते हैं तो भगवान्के नामका उच्चारण हो रहा है। जैसे हँसनेके समय मुख खिल गया तो मानो 'रा' उच्चारण हुआ और वापस बन्द करके मुसकरा रहे हैं तो 'म' उच्चारण हुआ। इस प्रकार जप और ध्यान दोनों साथ हो रहे हैं। यदि कोई निराकारका उपासक है तो वह इस प्रकार समझे—अपने शरीरमें प्रत्येक नाड़ी स्वाभाविक ही चल रही है, उनके साथ जपका सम्बन्ध जोड़ देना चाहिये। समझना चाहिये कि उससे स्वाभाविक ही जप हो रहा है और इसका मनसे अनुभव हो रहा है। यह भी मानसिक जप है।

देह में जितने रोम हैं, उनमें प्रसन्नता भर गयी है, इसलिये वे खिल गये हैं, मानो रोम-रोमसे राम-नामका उच्चारण हो रहा है, चित्तमें प्रसन्नता हो रही है। भगवान्की कृपासे मानो रोम-रोमसे भगवान्के नामका जप हो रहा है। रोमांच होता है, रोम खुलते हैं तो ऐसी

प्रतीति होती है, मानो रोम-रोमसे राम-राम हो रहा है। मनमें ऐसा प्रतीत होना उच्चकोटिका मानसिक जप है। ऐसा जप करके गुप्त रखना ज्यादा महत्वकी चीज है। इसमें रुचि और प्रीति दोनों साथ लगी हुई हैं। श्रद्धा और विश्वास—ये दोनों इसमें हैं ही। क्योंकि बिना श्रद्धा और विश्वासके ऐसा होना भी सम्भव नहीं है। बिना प्रेमके भी सम्भव नहीं है। अतः यहाँ यह कहना भी नहीं बनता कि अगर श्रद्धा और प्रेमसे किया जाय तो दर्जा और भी ऊँचा हो सकता है। ऐसा श्रद्धा और प्रेमसे ही होता है। जब श्रद्धा, प्रेम, रुचि और प्रीतिसे ऐसी स्थिति हो जाती है तब उसे इतनी प्रसन्नता और शान्ति होती है कि जिसकी कोई सीमा नहीं। यह प्रसन्नता और शान्ति श्रद्धा और प्रेमके कारण ही होती है। यह उच्चकोटिका जप है। इसमें भी जबतक उसमें कर्तापनका भाव है तबतक कमी है, उससे भी वह ज्यादा महत्वपूर्ण है जिस कर्तामें कर्तापनका भाव नहीं, क्योंकि उससे स्वाभाविक ही होता है। जो स्वाभाविक ही होता है, वह ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस प्रकारका जप जब स्वाभाविक ही नित्य-निरन्तर होने लग जाता है, एक क्षण भी उसमें भूल नहीं होती, एकतार जप होने लग जाता है तो जपके प्रभावसे ही भगवान् प्रकट हो जाते हैं; क्योंकि उसके जपके साथ-साथ रूपकी भी स्मृति है ही। चाहे साकारका उपासक हो या निराकारका, जो इस जपमें दिलचस्पी लेता है, रसास्वाद लेता है, आनन्दका अनुभव करता है, वह पुरुष भगवान्‌के दर्शनोंकी अपेक्षा इस प्रेमपूर्वक भगवान्‌के स्वतः होनेवाले नाम-जपको ज्यादा महत्वपूर्ण समझता है और वह यही चाहता है कि ऐसा जप निरन्तर बना रहे।

चाहना क्यों होती है ? निरन्तरतामें कमी होनेसे । जब निरन्तरतामें कमी नहीं रहती तो यह चाहना भी कैसे बने, वह तो हो ही रहा है । जबतक वह कर्ता है तबतक उसमें चाहना होती है; क्योंकि वह मनसे करता है । अर्थात् जबतक कर्तापना है तबतक इच्छा है । यह इच्छा

भी बड़ी उच्चकोटिकी इच्छा है, यह इच्छा कोई दोष नहीं है। आगे जाकर यह इच्छा भी नहीं रहती। जब इस प्रकारसे होने ही लग जाता है तब उसमें भूल होती ही नहीं, नित्य-निरन्तर ही होने लग जाता है, फिर यह इच्छा क्यों रहे ? इच्छा अभावमें होती है या भयमें होती है कि यह छूट न जाय। वहाँ भय भी नहीं, कोई अभाव भी नहीं, अतः इच्छा होनेका भी कोई कारण नहीं। जब भगवान् सम्मुख खड़े हैं फिर भगवान्‌के मिलनेकी इच्छा नहीं रहती; क्योंकि जब भगवान् मिल ही रहे हैं फिर मिलनेकी इच्छा रहनेका कोई कारण ही नहीं, बल्कि उस जगह यह शंका रहती है कि कहीं भगवान् अदृश्य न हो जायँ, छिप न जायँ। तब यह इच्छा होती है कि ऐसे ही बने रहें। जिसका यह भाव है, जिन भगवान्‌के नाम-स्मरणसे प्रत्यक्षमें ऐसा आनन्द हो रहा है यह उससे कैसे छूट सकता है, छूटनेका कोई कारण ही नहीं। भगवान् अपनेको दर्शन दे रहे हैं, देते-देते अन्तर्धान हो सकते हैं, वह हमारे वशकी बात नहीं, किंतु हमसे जो जप हो रहा है, वह उसी तरह नहीं छूट सकता जैसे श्वास बन्द होनेपर हम जी नहीं सकते। यह तो हमारा जीवन है, हमारे प्राणोंसे भी बढ़कर है। जिनको भगवान्‌का भजन प्राणोंसे भी बढ़कर प्रतीत होता है वह प्राणोंका तो त्याग कर सकता है किंतु भगवान्‌के नाम-स्मरणका त्याग नहीं कर सकता। इसी प्रकार विरहकी व्याकुलतामें भी ऐसी बात हुआ करती है। विरहकी व्याकुलता यानी भगवान्‌के वियोगकी व्याकुलतामें ध्यान प्रधान है। पहली पद्धतिमें जप भी है, ध्यान भी है और विरहमें भी जप एवं ध्यान दोनों हैं, पर पहलेमें तो जप होते-होते ध्यान होता है, इसलिये नाम-जपकी प्रधानता है, लेकिन विरहमें ध्यानके बलसे भगवान्‌का नाम भी याद रहता है। नामका जप करते-करते ध्यान होने लग जाय तो ध्यान होनेके बाद विरहकी व्याकुलता भी हो सकती है। सबके लिये अलग-अलग तरीका है, एक ही बात नहीं है। [क्रमशः]

संसार-जय

(पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार, एम०ए०)

अन्दर जो कामना है, बाहर वही संसार है— कामनाकी जो मूर्ति बाहर प्रकट है, वही संसार है। जो कामनापर विजय पा सकते हैं, भोगेच्छाका त्याग कर सकते हैं, स्वयं त्यागकर दूसरोंको त्यागकी शिक्षा दे सकते हैं, वे ही संसार-जयी पुरुष हैं।

भीष्मदेव संसार-जयी पुरुष थे। 'पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है, पिता ही परम तप है, पिताको सन्तुष्ट करनेसे सब देवता प्रसन्न होते हैं।' शास्त्रने यही शिक्षा दी है, परंतु आज ऐसे कितने मनुष्य हैं, जो इस शिक्षाके अनुसार कार्य करते हैं? भगवान्-भगवान् बहुत लोग करते हैं, परंतु उनमें बहुतेरे पितृद्रोही, मातृद्रोही और गुरुद्रोही होते हैं, यदि भगवान्को साथ रखकर कहीं घर करना पड़ता तो वे भगवद्द्रोही भी हो जाते! ऐसे लोग भगवान्को कहाँ पायेंगे? ये क्या साधन करेंगे? चरित्रवान् या चरित्रवती हुए बिना क्या भगवान् मिलते हैं? जो मनुष्य अपने पिता-माताके लिये भी अपना जरा-सा सुख नहीं त्याग सकता—भोगको नहीं छोड़ सकता, उसमें चरित्र कहाँ है? ऐसी प्रकृतिके मनुष्य, जो पिता-माता आदि गुरुजनोंके कड़े व्यवहारको मानकर नहीं चलते, साधनमार्गपर चलनेयोग्य नहीं हैं। इनका साधन करना दम्भ होता है। इन्हें पहले सीखना चाहिये—संसारमें तितिक्षु होना, बड़े आनन्दसे दूसरेके सुखके लिये अपनी भोगेच्छाका त्याग करना। ऐसा करनेपर फिर भगवान्के मार्गपर चलना सहज हो जायगा। संसारको जीतनेकी कला सीखे बिना भगवान्के समीप नहीं पहुँचा जाता।

भीष्मदेव संसारपर विजय पा सके थे। पिताके सन्तोषके लिये उन्होंने जीवनभर स्त्रीका ग्रहण नहीं किया। पिताकी बात तो दूर—पिता जिसकी कन्यासे विवाह करना चाहते थे, उसके सामने राज्यत्याग और आजीवन स्त्रीत्यागकी प्रतिज्ञा किये बिना पिताका अभिलाष पूर्ण नहीं होगा, ऐसा समझकर भीष्मदेवने हँसते-हँसते जीवनभरके लिये कामिनी और कांचनका सर्वथा त्याग कर दिया। वे ही सच्चे संसार-जयी थे। भीष्मदेव विरक्त होकर संसारसे भागे नहीं, बल्कि विमाताके पुत्रको सिंहासनपर बैठाकर स्वयं उसके रक्षक बनकर रहे। यही

सच्ची विजय है!

भीष्मदेव हमारे आदर्श हैं। इस संसार-जयी महापुरुषने मृत्युको भी जीत लिया था। ईसामसीहका क्रॉससे बिंध जाना अवश्य ही प्रशंसाकी बात है। परंतु भीष्मदेव हजारों तेज धारवाले बाणोंसे बिंधे होनेपर भी अविचलित थे। इच्छामृत्यु होनेपर भी हजारों तीरोंको शरीरमें बिंधे रखकर ही उन्होंने धर्मका उपदेश किया था और आनन्दके साथ उत्तरायणतक जीवनको रखा था। इस ऐतिहासिक सत्यको असम्भव मानकर इसे कहानी कहकर उड़ा देनेसे काम नहीं चलता। आज इसपर विश्वास नहीं होता, इसमें हमारी मूढ़ बुद्धि ही कारण है। जब पहले-पहल रेल-तार चले थे तब ग्रामीण किसानोंको उनपर विश्वास नहीं हुआ था। आज हम चरित्रबल, धर्मबल, तपोबल आदिके सम्बन्धमें सर्वथा अज्ञानी हैं। निरक्षर, ग्रामीण किसानकी अपेक्षा भी हमारी अवस्था गयी-गुजरी है। इसीसे हमें विश्वास नहीं होता, परंतु इससे भीष्म काल्पनिक नहीं हो जाते। इसीलिये हमने कहा था कि पितामह संसार-जयी पुरुष थे।

सर्वांगीण संसार-जयके आदर्श हैं भगवान् श्रीराम।

धर्ममार्ग चरित्रेण ज्ञानमार्ग च नामतः।

तथा ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्य यस्य पूजनात्॥

यही श्रीभगवान्की महिमा है। अभिषेककी तैयारी हो गयी है। प्रातःकाल राजा होंगे। बहुत दूर-दूरसे लाखों नर-नारी अभिषेकके लिये आये हैं। सब कुछ तैयार है, ऐसे समय श्रीभगवान् राज्य छोड़कर वनको चले जाते हैं—पिताके सत्यकी रक्षाके लिये! श्रीभगवान्ने पिताके चरित्रपर विचार नहीं किया। बल्कि जिन्होंने पिताके चरित्रपर विचार करके उसमें दोष दिखलाया, उन्हें यह समझा दिया कि पिताका दोष ही नहीं हो सकता—पिताका दोष देखनेसे पुत्रका पुत्रत्व ही नहीं रहता।

पिताने किस प्रकारसे, किसके सामने, किस अवस्थामें दानकी बात स्वीकार की थी। प्रभुके मनमें इसका विचार ही नहीं आया। पिता किसी भी प्रकारसे, किसी भी अवस्थामें आज्ञा क्यों न दें, उनकी आज्ञाको बिना विचार पालन करना चाहिये। यही चरित्र है। इसीकी नाम

संसार-जय है। यही सत्यता है। पितामें दोष देखना तो असभ्यता—बर्बरता है। 'पिता भगवान् हैं, पिताका दोष हो ही नहीं सकता। मैं अभागा शैतानके जालमें फँसकर पिताकी बातें नहीं मानता हूँ।' जिसका हृदय इस प्रकार कहता है, वह एक दिन संसार-विजयी हो सकता है!

एक बात और! वनगमनके समय पिताने प्रभुको रोकना चाहा। प्रभुने विचार किया और विचार करके कहा—आप इस समय जो कुछ कह रहे हैं, यह स्नेह है। स्नेहमें पड़कर मनुष्यको सत्यका त्याग करके असत्यका ग्रहण नहीं करना चाहिये। यह भारतके असाधारण धर्मका फल है। साधारण धर्म दूसरे देशोंमें है। पर असाधारण धर्म तो भारतमें ही है। इस धर्मका कोई अंश यदि अन्यत्र देखा जाता है तो वह इस देशसे आनेकी ही सूचनामात्र है। इस देशके जीवोंका कर्मसूत्रमें बँधकर वासनावश अन्य देशोंमें जन्म हो गया है। इसीसे पूर्वसंस्कारवश ये किसी अंशमें इस देशका व्यवहार कर बैठते हैं।

श्रीभगवान्ने एक और भी कठिन लीला की थी। उन्होंने कलंकशून्या, निरपराधा सहधर्मिणीको भी त्याग दिया था। कंचनका त्याग ठीक है, कामिनीका ग्रहण न करना भी ठीक है। परंतु ग्रहण करके, पूर्णरूपसे उसे पवित्र जानकर और रमणीयताकी साक्षात् मूर्ति देखकर भी 'स्वामिगतप्राणा', 'समचित्त-स्पन्दनवती' का परित्याग कर देना और कहीं नहीं है! श्रीभगवान्ने देवीका त्याग क्यों किया? राजाका कर्तव्य पालन करनेके लिये? यह कर्तव्य प्रजारंजन है। प्रजाके लिये सारे सुखोंका विसर्जन कर देना ही राजधर्म है। आश्रितके लिये अपने सुखकी कामनाका त्याग ही पूर्णमात्रामें संसार-जय है।

प्रजा अज्ञानी हो सकती है—आश्रितजन मूर्ख हो सकते हैं—परंतु राजा यदि अज्ञानी मूर्ख आश्रितोंको क्षमा करके उनके दोषोंको न सुधार सके तो राजधर्म कैसे रह सकता है? इस प्रकारके कार्योंसे राजाको महान् क्लेश होगा। अपने प्रधान स्वार्थका त्याग करना पड़ेगा। परंतु राजा यदि ऐसा नहीं करे तो उसकी प्रजाका, उसके आश्रितोंका अपने अज्ञानवश और भी मन मैला होगा—उनका अज्ञान और भी बढ़ जायगा और उनके अज्ञानसे राज्य पापसे भर जायगा। इसलिये राजा अपने किसी भी

दुःखकी परवा न करके प्रजाका उपकार ही करता है। श्रीभगवान्ने जनकनन्दिनीका त्याग किया। कहा जा सकता है कि प्रजाके अज्ञानके कारण राजा ने महारानीके साथ अविचार किया। बिना ही अपराधके उसका त्याग कर दिया। हम कहते हैं, यह त्याग त्याग नहीं था, यह थी प्रतिष्ठा। यही संसार-जय है।

स्थूल देहको आँखोंसे अलग करना ही क्या त्याग है? सूक्ष्मभावसे सीताका निरन्तर मनोराज्यमें स्थापन कर लेना उसका त्याग है या स्थापना? सीताको त्यागकर भगवान्ने जितना दुःख सहा, उतना दुःख क्या सीताको हुआ था? 'रे रे दाहिने हाथ! तूने सीताका त्याग कर दिया था' श्रीभगवान्की इस कातरोक्तिमें त्यागकी बात है या चिरस्थापनाकी? अश्वमेधयज्ञमें सीताकी स्वर्णमयी मूर्तिको वामभागमें स्थापन करके यह यज्ञ सम्पादन करना त्याग है या स्थापना? जगत्के हितके लिये जो स्थूलका त्याग करके सूक्ष्मकी स्थापना कर सकते हैं, वे ही यथार्थ संसार-जयी हैं और जो संसार-जयी है, वही पुरुष संयमी है।

श्रीभगवान्ने स्वयं आचरण करके जो आदर्श दिखलाया, वैसा और कहाँ है? ऐसा संसार-जय और कौन दिखा सकता है? आओ—आओ, इस आदर्शका अनुकरण करनेके लिये हम प्राणप्रण करें। पिता, माता, गुरु, स्वजनोंके लिये हम संसार-जय करें। कर्तव्यके लिये आदर्शको अक्षुण्ण रखकर मनुष्य बनें!

कर्तव्यके सामने अपनी कामनाकी चरितार्थता? प्रेमके सामने कामका कदर्य कार्य? तुम्हारे जरा-से सुख-त्यागसे यदि परिवारका मंगल होता है, समाजका कल्याण होता है, जातिका, चरित्रका और धर्मका महत्त्व प्रतिष्ठित होता है तब क्या स्वार्थरूप पशुत्वका विसर्जन कर देना उचित नहीं है? अपना आहार, निद्रा, भय और मैथुन ही तो पशुत्व है। स्वयं पशुत्वको जय करके—दूसरेको पशुत्वके जय करनेकी शिक्षा देना क्या कर्तव्य नहीं है? पशुत्वको त्यागकर देवत्वके ग्रहणके लिये प्राणोंकी बाजी लगा देना ही क्या बुद्धिमान् पुरुषके जीवनका उद्देश्य नहीं होना चाहिये? पशुत्व-जयकी चेष्टाको क्या संसार-जय नहीं कहा जा सकता?

‘अर्जुन! जो अपने ही समान सम्पूर्ण प्राणियोंमें समदृष्टि रखता है और सबके सुख या दुःखको भी समतासे देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।’ वस्तुतः उसके अनुभवमें सर्वत्र एक आत्मा ही रह जाता है। वह किसी भी वर्ग, वर्ण, जाति, पद, देश, धन, सम्प्रदाय आदिके भेदसे आत्मामें भेद नहीं मानता। भेदोंमें रहते हुए ही वह अभेदभावसे सबका वैसे ही हित चाहता और करता है, जैसे मनुष्य अपने मस्तक, हाथ, पैर और नीचेकी इन्द्रियों आदिके व्यवहारमें भेद मानता तथा बरतता हुआ भी उनमें समान आत्मभाव रखता और

चोर तो हैं ही, दूसरे लोगोंकी अभावपूर्तिमें बाधक बनकर एक नया पाप और करते हैं। देशमें करोड़ों आदमियोंको अंग ढकनेके लिये भी पर्याप्त कपड़े नहीं हैं और कुछ लोगोंकी पेटियाँ, आलमारियाँ कपड़ोंसे भरी रहती हैं, नये-नये फैशनके कपड़े वे खरीदते ही रहते हैं। सुना है कि कोट-पैंट आदिकी सिलार्डमें वे हजारों रुपये व्यय कर देते हैं। उनके घरोंमें इधर-उधर कपड़े बिखरे पड़े रहते हैं, दीमक लग जाती है, ऊनी-रेशमी कपड़ोंको कीड़े काट डालते हैं, पर परिग्रहसे उनका मन नहीं भरता। खानेके लिये मनुष्यको कितना चाहिये, पर हमलोग पचासों प्रकारकी चीजें बनाकर शरीरकी आदतोंको बिगाड़ते, नये-नये रोगोंको बुलाते तथा खाद्य पदार्थोंका विपुल संग्रह रखनेमें अपनी शान समझते हैं। जहाँ करोड़ों भाई एक समय पेटभर पूरा खा नहीं पाते, वहाँ ऐसा व्यवहार क्या पाप नहीं है? करोड़ों मनुष्य टूटी झोपड़ियोंमें रहते हैं, पर एक मनुष्य दर्जनों मकानोंपर अपना नाम रखता है। ऐसा नहीं कि वह दर्जनों मकानोंमें एक साथ सोता-बैठता हो। हाथ कहीं सोये, पैर कहीं सोये, सिर कहीं सोये—ऐसा नहीं होता, उसका अभिमानमात्र बढ़ता है। पर मनुष्यका मोह, उसे ममताके विस्तारमें लगाये रखता है। वह अपने लिये मकान भी बनाता है तो उसमें बीसों कमरे होते हैं, यह सब अनावश्यक वस्तुओंकी आवश्यकता तथा उनके संग्रह-परिग्रहकी प्रवृत्ति मनुष्यको दूसरोंके हितोंकी ओरसे अन्धा बना देती है और प्रकारान्तरसे वह मानव-समाजका अहित करनेमें ही लगा रहता है। यह प्रवृत्ति समाजमें इसी प्रकार बनी रही और बढ़ती रही तो पता नहीं, समाजकी क्या दशा होगी। समाजके हितैषी पुरुषोंको तथा प्रत्येक समझदार पुरुषको इसपर विचार करके ऐसे अमोघ उपाय सोचने तथा करने चाहिये, जिससे मानव-समाज इस पतनोन्मुखी प्रवृत्तिसे बचे तथा सबको इहलौकिक सुख-शान्तिके साथ मानव-जीवनके प्रधान लक्ष्य—विशुद्ध आत्मस्वरूपकी या भगवान्की प्राप्ति हो।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्

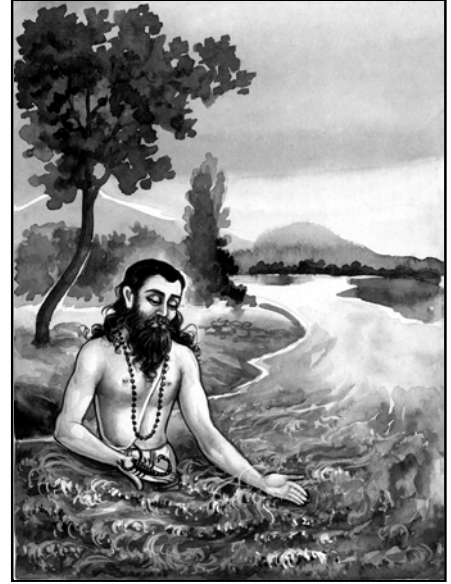
(डॉ० श्रीशिवेन्द्रप्रसादजी गर्ग, 'सुमन')

हितोपदेशकी यह नीति-संगत उक्ति बहुत ही जलमें बह रहे बिच्छूको बचानेके लिये हाथमें लेते जाते प्रेरणास्पद है कि 'उदार चित्तवालोंके लिये तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही कुटुम्बवत् है'—

‘उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।’

जो लोग उदार मनवाले हैं, वे मेरे-तेरेमें नहीं पड़ते। उनका दृष्टिकोण स्वसेवाका न होकर परसेवाका होता है। जब वृक्षोंमें फल आते हैं तब वे झुक जाया करते हैं। नदीमें जब जल भरता है तब पानी किनारेकी ओर बढ़ता है। फल एवं नदीका ऐसा आचरण केवल परमार्थके लिये है। उदार व्यक्तिकी सम्पत्ति सबके लिये होती है—वह दूसरेको देकर ही कुछ खाता है। वह अपने लिये संचय नहीं करता। शास्त्रोंके अनुसार जो अकेला खाता है, वह पाप खाता है। शास्त्रोंके अनुसार अपनी आयका पंचमांश अथवा दशमांश दानमें दिया जाना चाहिये।

उदार व्यक्तिका अस्तित्व ही दूसरोंके कल्याणके लिये होता है। साधु, महामानव एवं सज्जनवृन्द छायादार वृक्षकी तरह हैं, जो दूसरोंको शीतल आरामदायक छाया प्रदान करते हैं। उनके सम्पर्कमें आनेपर जीवको केवल लाभ-ही-लाभ मिलता है। ऐसे सज्जन व्यक्तिसे किसीको भी किसी भी प्रकारकी हानिकी सम्भावना नहीं रहती। कारनेलके अनुसार—‘उदारता उच्च वंशसे आती है, दया-कृतज्ञता उसके सहायक हैं।’ एक चीनी कहावतके अनुसार—‘उदार मनवाले भिन्न-भिन्न धर्मोंमें साम्य देखते हैं, संकीर्ण मनवाले उनमें अन्तर खोजते हैं।’ उदार व्यक्तिको दूसरेके द्वारा उसके प्रति किया गया पहाड़-जैसा अपकर्म भी राईके बराबर एवं राई-सा सत्कार्य भी पर्वतवत् लगता है। दूसरेके प्रति उसका राईके समान अपकर्म उसे पहाड़-सा एवं पहाड़-सा सत्कार्य राईके समान लगता है। उदार व्यक्ति अपनी हानि सहकर भी दूसरेको लाभ पहुँचाता है। इस सम्बन्धमें उन महात्माजीका दृष्टान्त स्मरणीय है, जो



थे, पर बिच्छू डंक मारे ही जा रहा था। किसीके रोके जानेपर उन्होंने कहा—‘जब यह छोटा-सा जीव अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तो मैं अपना स्वभाव (पररक्षाका भाव) कैसे छोड़ सकता हूँ?’

एक अन्य दृष्टान्त है, किसी सँकरे पुलपर आमने-सामनेसे दो राजाओंके रथ आ रहे थे। दोनों राजाओंके सारथी अड़ गये कि जो राजा छोटा हो, उसीका सारथी रथको बाजू करे (एक तरफ हटाये) एवं दूसरे राजाके रथको रास्ता दे। दोनों राजाओंके सारथियोंने अपने-अपने राजाकी महिमाका बखान किया। दोनों ही राजा धन, राज्य एवं अन्य सभी बातोंमें बराबर निकले। अन्तमें एक सारथीने कहा—‘हमारा राजा उदारको उदारतासे, सज्जनको सज्जनतासे, लोभीको लोभसे एवं दुष्टको दुष्टतासे जीतता है।’ इसके उत्तरमें दूसरे सारथीने अपने राजाका गुण बताया—‘हमारा राजा दुष्टको भी सज्जनतासे जीतता है, लोभीको उदारतासे वशमें लाता है।’ सारथी अपनी बात पूरी कर ही रहा था कि दूसरे रथवाले राजा रथसे उतरकर पहलेवाले राजाके पाँवोंमें गिर पड़े।

परिपालन ही करते हैं।'—

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं

कूर्मो विभर्ति धरणीं खलु पृष्ठभागे ।

अम्भोनिधिर्वहति दुःसहवाडवाग्नि-

मङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥

(चौरपञ्चाशिका)

उदार व्यक्ति परायी निन्दा करनेमें मूक, परदोष देखनेमें अन्धे एवं चुगली सुननेमें बधिर बन जाते हैं। चन्दनके वृक्षको चाहे काटा भी जाय, किंतु फिर भी वह कुल्हाड़ीके मुखको सुवासित ही करता है। उदार व्यक्तियोंका जीवन ही दूसरोंके लिये होता है।

चन्दनको बार-बार चाहे जितना ही घिसा जाय, वह उतना ही अधिक सुगन्ध देता जाता है—‘**चन्दनं चारु-गन्धम्।**’ गन्नेको बार-बार काटने-चूसनेपर भी वह मीठा ही बना रहता है—‘**निष्पीडितोऽपि मधु ह्यद्वमतीक्षुदण्डः।**’ स्वर्णको बार-बार तपानेपर भी वह चमकता ही है—‘**काञ्चनं कान्तवर्णम्।**’ उत्तम पुरुषोंका चाहे प्राणान्त ही क्यों न हो जाय, उनकी प्रकृतिमें कोई अन्तर नहीं आता। मार्कण्डेयपुराणमें आता है कि श्रेष्ठ पुरुषोंका यही लक्षण है कि उनके चित्तमें अहित करनेवालोंके प्रति भी दयाभाव बना रहता है। कर्णने अपना कवच-कुण्डल, शिबिने अपना मांस, जीमूतवाहनने अपने प्राण और दधीचिने अपनी अस्थियाँ भी दान कर दीं—महात्माओंके लिये कोई वस्तु अदेय नहीं है। कहा भी गया है—

यस्य जीवन्ति धर्मेण पुत्रा मित्राणि बान्धवाः ।

सफलं जीवितं तस्य नात्मार्थे को हि जीवति ॥

एक गूढोक्ति है—‘परमार्थी महास्वार्थी।’ इसी

प्रकार दान देनेवाला भी परमलोभी है; क्योंकि लोभी तो अपना धन पृथ्वीपर ही छोड़ जाता है, जबकि दाता उसे अपने साथ ले जाता है, अर्थात् मृत्युके बाद भी उसे पुनः प्राप्त कर लेता है। जब एक दाता (रहीम) -को आँखें झुकाये हुए दान करते देखा गया तो उससे इसका कारण पूछा गया। दाताने उत्तर दिया—

देनदार कोड़ और है, भेजत है दिन रैन।

लोग भ्रम मुझपर करत, ताते नीचे नैन ॥

उदारता एवं दया ये वे गुण हैं, जो दाता एवं प्राप्तकर्ता दोनोंके लिये उत्तम परिणाम देते हैं। इसीलिये उदारमना व्यक्ति अपना सर्वस्व लुटाकर भी प्रसन्न रहते हैं। जो सुख लुटानेमें है, समर्पण करनेमें है, बाँटनेमें है, वह लूटनेमें नहीं, संचय करनेमें नहीं। अनुदारताका एक ही उत्तर है—उदारता, थपड़का एक ही प्रतीकार है—उसके आगे दूसरा गाल कर देना; यही बड़ा बड़प्पन है; अन्यथा हिंसा, प्रतिहिंसाका एक दूषित क्रम चालू हो जाता है। किसीको कुछ देकर, कहीं कुछ खोकर आप जो कुछ प्राप्त करते हैं, निश्चय ही वह बहुत ही अमूल्य निधि है। अपने दुश्मनको कोई महामना ही क्षमा कर पाता है। काश! ऐसी सदाशयता एवं उदारता हम सबमें होती!

सचमुच तेरा-मेरा करना ओछापन है—क्षुद्रता है।

उदार चरितवालोंके लिये तो समूची पृथ्वी ही परिवारकी तरह है—‘उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।’ ऐसे ही सात व्यक्तियोंने इस संसारको धारण किया है, जिनमें अलोभी और दानशील अन्तिम हैं—

‘अलब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही।’

(शिवपराण)

दूसरोंकी निन्दा किसी हालतमें न करो

शेख सादी लड़कपनमें अपने पिताके साथ मक्का जा रहे थे। वे जिस दलके साथ जा रहे थे, उसकी प्रथा थी—आधी रातको उठकर प्रार्थना करना। एक दिन आधी रातके समय सादी और उनके पिता उठे। प्रार्थना की, दूसरे लोगोंको सोते देख सादीने पितासे कहा—‘देखिये, ये लोग कितने आलसी हैं, न उठते हैं, न प्रार्थना करते हैं।’

पिताने कड़े शब्दोंमें कहा—‘अरे सादी बेटा! तू भी न उठता तो अच्छा होता, जल्दी उठकर दूसरोंकी निन्दा करनेसे तो न उठता ही लेक था।’

साधकोंके प्रति—

[बिन्दुमें सिन्धु]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जो चीज जितनी श्रेष्ठ और आवश्यक होती है, उतनी ही वह सस्ती मिलती है। हीरा-पन्ना हमें उम्र भर देखनेको न मिलें तो भी हम जी सकते हैं, इसलिये वे बहुत महँगे मिलते हैं। अन्न उससे भी सस्ता मिलता है; क्योंकि अन्नके बिना हम जी नहीं सकते। अन्नसे भी जल ज्यादा आवश्यक है, इसलिये वह अन्नसे भी सस्ता मिलता है। जलके बिना तो हम कुछ रह सकते हैं, पर हवाके बिना तो रह ही नहीं सकते, इसलिये हवा मुफ्तमें मिलती है तथा सब जगह मिलती है। परन्तु परमात्मा उससे भी सस्ते हैं! हवा कहीं कम मिलती है, कहीं ज्यादा; कभी तेज चलती है, कभी मन्द; परन्तु परमात्मा सब जगह तथा सब समय समान रीतिसे ज्यों-के-त्यों परिपूर्ण हैं, और वे सबके अपने हैं। उनके बिना कोई भी चीज नहीं है। पृथ्वी, जल, हवा, अग्नि और आकाश तो सदा नहीं रहेंगे, पर परमात्मा सदा ज्यों-के-त्यों रहेंगे। अतः परमात्मा सबसे आवश्यक हैं और सबसे सस्ते हैं। आपने सांसारिक चीजोंको ज्यादा महत्त्व दे रखा है, इसलिये परमात्मा दीखते नहीं। इनको इतना महत्त्व मत दो, परमात्मा दीख जायँगे, उनकी प्राप्ति हो जायगी। केवल उनको याद रखो कि हमारे प्रभु सबमें हैं। उनको याद करनेमें कोई खर्चा नहीं, कोई परिश्रम नहीं, और निहाल हो जाओगे! जिसने परमात्माको हर समय याद रखा, वह सन्त-महात्मा हो गया!

आप लोगोंके पास धन-सम्पत्ति, घर-परिवार आदि है, फिर भी चिन्ता रहती है। परन्तु विरक्त सन्तोंके पास कुछ भी नहीं होता, जंगलमें रहते हैं, फिर भी वे मस्तीमें रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनको आपलोगोंसे भी कोई बढ़िया चीज मिली है। वह चीज केवल सन्तोंके लिये ही हो, ऐसी बात नहीं है। वह चीज सब भाई-बहनोंके लिये है। वह मिल जाय तो फिर मौज-ही-मौज है, आनन्द-ही-आनन्द है!!

श्रोता—जब भगवान् अपने हैं तो फिर हम उनसे बिछुड़ कैसे गये? चौरासी लाख योनियोंके चक्करमें कैसे पड़ गये? यह आप बतानेकी कृपा करें।

स्वामीजी—बता तो मैं दूँगा, पर इसमें आपको फायदा नहीं है, नुकसान है। मैल कैसे लगा, कब लगा, इससे क्या फायदा? उसको साफ कर दो, इतनी बात है। बीती हुई बातकी चिन्ता करना बुद्धिमानी नहीं है। एक कहावत है कि **‘गयी तिथि ब्राह्मण भी बाँचता नहीं’**।

आज आपको रुपये और भोग अच्छे लगते हैं, बस, यही बन्धनका कारण है। जबतक ये अच्छे लगते रहेंगे, तबतक छूटोगे नहीं। जब ये अच्छे लगने बन्द हो जायँगे, पट प्राप्ति हो जायगी! हम इसलिये फँसे हैं कि हम रुपये और भोग चाहते हैं, मान-बड़ाई चाहते हैं, सत्कार चाहते हैं। यह चाहना छोड़ दें तो सब ठीक हो जायगा।

×

×

×

लोग निन्दा करें तो करने दो। सब लोगोंको अपनी तरफसे छुट्टी दे दो, वे चाहे निन्दा करें, चाहे प्रशंसा करें, जिसमें वे राजी हों, करें। आप सबको छुट्टी दे दो तो आपको छुट्टी (मुक्ति) मिल जायगी! प्रशंसामें तो मनुष्य फँस सकता है, पर निन्दामें पाप नष्ट होते हैं। कोई झूठी निन्दा करे तो चुप रहो, सफाई मत दो। सत्यकी सफाई देना सत्यका निरादर है। भरतजी कहते हैं—

जानहुँ राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

(रा०च०मा० २।२०५।१-२)

दूसरा आदमी हमें खराब समझे तो इसका कोई मूल्य नहीं है। भगवान् दूसरेकी गवाही नहीं लेते। दूसरा आदमी अच्छा कहे तो आप अच्छे हो जाओगे, ऐसा कभी होगा नहीं। अगर आप बुरे हो तो बुरे ही रहोगे। अगर आप अच्छे हो तो अच्छे ही रहोगे, भले ही पूरी

×

×

×

खटपट, मतभेद नहीं होना चाहिये। पहले शैवों और वैष्णवोंमें आपसमें बड़ी खटपट थी। उसको गोस्वामीजी महाराजने दूर किया। उन्होंने शंकर और विष्णुको एक बताया और दोनोंको एक-दूसरेका उपासक बताया। शंकरजीके लिये कहा— **‘सेवक स्वामि सखा सिय पी के’** (रा०च०मा० १।१५।४) अर्थात् शंकरजी रामजीके सेवक भी हैं, स्वामी भी हैं और मित्र भी हैं। जैसे, शंकरजीने हनुमान्जीका रूप धारण करके रामजीकी सेवा की। लंकापर चढ़ाई करनेसे पहले रामजीने शंकरजीका पूजन किया। तात्पर्य है कि शैवों और वैष्णवोंके बीच मतभेदको लेकर आपसमें खटपट बिलकुल नहीं होनी चाहिये।

मन्निन्दया यदि जनः परितोषमेति

नन्वप्रयत्नसुलभोऽयमनुग्रहो मे।

श्रेयोऽर्थिनो हि पुरुषाः परतुष्टिहेतो-

दुःखार्जितान्यपि धनानि परित्यजन्ति ॥

(जीवन्मुक्तिविवेक २)

‘मेरी निन्दासे यदि किसीको सन्तोष होता है, तो बिना प्रयत्नके ही मेरी उनपर कृपा हो गयी; क्योंकि कल्याण चाहनेवाले पुरुष तो दूसरोंके सन्तोषके लिये अपने कष्टपूर्वक कमाये हुए धनका भी परित्याग कर देते हैं (मुझे तो कुछ करना ही नहीं पडा) !’

किसी आदमीके पास दस हजार रुपये हैं और वह टिकट लेकर गाड़ीपर चढ़ा है, पर दूसरे कहते हैं कि इसके पास एक कौड़ी भी नहीं है, टिकट भी नहीं लिया होगा, तो क्या उस आदमीको दुःख होगा? वह तो सोचेगा कि अच्छी बात है, मेरी रक्षा हो गयी, कोई जेबकतरा नजदीक नहीं आयेगा!

श्रोता—आपने कहा कि सफाई देना सत्यका निरादर है. यह ठीक समझमें नहीं आया।

स्वामीजी—कोई पूछे तो सत्य बात कह दे। बिना पूछे लोगोंमें कहनेकी जरूरत नहीं। बिना पूछे सफाई देना सत्यका निरादर है। हम पाप नहीं करते, किसीको दुःख नहीं देते, फिर भी हमारी निन्दा होती है तो उसमें दुःख नहीं होना चाहिये, प्रत्युत प्रसन्नता होनी चाहिये। भगवान्की तरफसे जो होता है, सब मंगलमय ही होता है। इसलिये मनके विरुद्ध बात हो जाय तो उसमें आनन्द मनाना चाहिये।

\times \times \times

श्रोता—रामायणमें आया है—‘**संकर भजन बिना
नर भगति न पावइ मोरि**’ (रा०च०मा० ७।४५) तो
क्या शंकरके भजनके बिना हम भगवान्की भक्ति नहीं पा
सकते ?

स्वामीजी—इसमें एक मार्मिक बात है कि आपसमें

वैष्णवलोग शिवजीके मन्दिरमें नहीं जाते तो इसमें एक छिपी हुई बात है। वैष्णवलोग मस्तकपर जो तिलक करते हैं, उसमें तीन रेखाएँ होती हैं—दोनों तरफकी रेखाएँ भगवान्के चरणोंका चिह्न और दोनोंके बीचकी लाल रेखा लक्ष्मीजीका चिह्न है। इस तिलकको लगाकर शंकरके सामने नहीं जाते; क्योंकि भगवान् शंकर नग्नवेशमें हैं, फिर लक्ष्मीजीका चिह्न लगाकर उनके सामने कैसे जायँ? परन्तु इसका तात्पर्य खटपट नहीं होना चाहिये। किसीसे भी वैर रखना नरकोंमें ले जानेवाला है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।

ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महँ बास ॥

(रा०च०मा० ६।२)

वास्तवमें भगवान् विष्णु और शंकर एक हैं। सत्त्वगुणका रंग सफेद, रजोगुणका रंग लाल और तमोगुणका रंग काला है। सृष्टिकर्ता (रजोगुणी) ब्रह्माजीका रंग तो लाल है, पर विष्णुका काला और शंकरका सफेद रंग है, जबकि पालनकर्ता (सत्त्वगुणी) विष्णुका सफेद और संहारकर्ता (तमोगुणी) शंकरका काला रंग होना चाहिये। कारण यह है कि शंकरका ध्यान करनेसे विष्णु काले हो गये और विष्णुका ध्यान करनेसे शंकर सफेद हो गये! विष्णुके भक्त जो तिलक करते हैं, वह शंकरके

\times
 \times
 \times

भगवदुपासनाद्वारा वासनाहीन होकर ईश्वरमें लगनेपर मुक्ति प्रदान करता है।

शरीर तथा धनसे भगवत्सेवा-पूजा करनेपर प्रायः मन भाग जाता है, परंतु मनसे की हुई सेवा-पूजा, तन तथा धनसे परिपुष्ट होकर ध्यानकी प्रगाढ़ताको बढ़ाकर चित्तको भगवन्मय बना देती है, इसी कारण मानसी सेवा-पूजाको मुख्य बताया गया है—

कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता।

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा॥

गीतामें 'मन्मना भव' कहकर भगवान् ने अपनेमें मन लगानेकी प्रेरणा दी है तथा 'मय्यर्पितमनोबुद्धिः' का फल 'मामेवैष्यत्यसंशयम्' निःसन्देह भगवत्प्राप्ति बताया है। 'जैसा करे संग तैसा चढ़े रंग', यह कहावत प्रसिद्ध है। भगवान् प्रेम, कृपा, सौहार्द, माधुर्य तथा दयालुता इत्यादि गुणगणोंके भण्डार एवं निर्विकार हैं। अतः शक्तिपुंजसे जुड़कर अन्धकारनाशक विद्युत्-बल्बकी भाँति भगवत्प्रेम-भावभावित भक्त स्वयं दिव्य होकर अपने सान्निध्यमें आनेवालोंमें भी निर्विकारिता लानेमें समर्थ हो जाता है—

हरी प्रेमरस जे पगे, तन-मन की सुधि नाहिं।

'महेश्वरानन्द' तिन संगत, सकल विकार नसाहिं॥

भण्डारेके समय अनुभवमें आया है, 'भोजन कर लो' कहनेपर कम लोग भोजन करते हैं, परंतु 'भगवान् का प्रसाद पा लो' कहनेपर भोजन करनेवालोंकी संख्या बढ़ जाती है। जब अन्नसे भगवान् का सम्बन्ध जुड़ते ही भावना बढ़ जाती है, जिससे भण्डारेके भोजनका महत्त्व बढ़ जाता है, तब परमेश्वरसे सम्बन्ध जोड़नेवाले मनुष्यकी महत्ता क्यों नहीं बढ़ेगी? श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने सनातनसे कहा है—'भक्तिके बल पार तुमि ब्रह्माण्ड शोधिते।' भक्तिकी शक्तिद्वारा तो तुम ब्रह्माण्डको भी दिव्य, शुद्ध, विकारहीन बना सकते हो।

यह प्रेमी-भक्तोंके प्रेम-भावकी ही विशेषता है कि शक्ति, ऐश्वर्य, धर्म, यश, ज्ञान, वैराग्य, तप, स्रष्टापन, द्रष्टापन तथा सम्यक् आत्मबोध—इन दस ऐश्वर्योंसे युक्त तथा क्लेश, कर्म-विपाक और आशयशून्य, अजन्मा,

निर्विकारी, इच्छारहित, सर्वव्यापी, निराकार, मायारहित कूटस्थ ब्रह्म नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त तथा सबका मुक्तिदाता होते हुए भी वह प्रेमास्पद भगवान् प्रेमी-भक्तोंके हाथका खिलौना बन जाता है। मैं उस अति आश्चर्यजनक प्रेम-बन्धनकी वन्दना करता हूँ—

अहो चित्रमहो चित्रं वन्दे तत्प्रेमबन्धनम्।

यद्वद्धं मुक्तिदं मुक्तं ब्रह्मक्रीडामृगीकृतम्॥

प्रेम-भावभावित होनेके कारण ही तो गोपियोंके छाछके लोभमें वे नाचते हैं, भक्तिमती करमाबाईकी खिचड़ी आरोगते हैं, दुर्योधनके मेवे-मिष्ठानादि छप्पन भोगोंको त्यागकर विदुरानीके छिलकोंको सराहते हुए खाते हैं, शबरीके जूठे बेर तथा सुदामाके सूखे चिउड़ेका भोग लगाते हैं।

प्रेम-भावपूरित हृदयकी प्राप्ति असीम भगवत्कृपासे होती है। भगवत्प्रदत्त प्रेम जब क्षणभंगुर—विनाशशील वस्तु एवं व्यक्तियोंके प्रति होता है तब मोह, दुःख, अशान्तिका जनक होता है और राग कहलाता है, वही प्रेम ईश्वरके प्रति होनेपर अनुराग कहलाता है। राग स्वार्थ, पशुता एवं जड़ताका जनक है, जिससे मनके अधोगामी होनेसे अशान्ति एवं पतनकी सम्भावनाएँ बढ़ती हैं, जबकि अनुराग त्याग एवं परमार्थका जनक है, जिससे मन ऊर्ध्वगामी होता है और मनुष्य शान्ति एवं परमकल्याणकी ओर बढ़ता है। रागसे दुःख-दोषोंकी अभिवृद्धि तथा भगवद्धिमुखता बढ़ती है, जबकि अनुरागसे सद्गुणोंकी अभिवृद्धि, सुख-शान्तिकी प्राप्ति होती है। राग गहनतम अन्धकार है, जबकि अनुराग दिव्यता-निर्मलतायुक्त सूर्य है। राग विषमिश्रित मधु है तो अनुराग स्वर्गीय अमृत है। सांसारिक सुख-सामग्रियोंकी परिपूर्ण उपलब्धता होनेपर भी भगवान् के प्रति प्रेम न होनेसे जीवनमें पूर्णता नहीं आती।

काम बड़ो, धन-धाम बड़ो, जग में यश छाये नाम बड़ो है। ज्ञान बड़ो, बहु मान बड़ो, वंश कुटुम्ब गुमान बड़ो है॥ गुण-रूप बड़ो, पुरुषार्थ बड़ो, बल-वैभव इन्द्र समान बड़ो है। महेश्वरानन्द हरि भगति बिना, या जीवन में सब घटो ही घटो है॥

याद रखो, जो आपको छोड़ दे या जिससे आपको

सेवा करिए सर्व की तब होवे उद्धार॥

जिन्होंने मानवका निर्माण किया है, वे अपने दुलारे मानवको निरन्तर देखते रहते हैं और प्रतीक्षा करते रहते हैं कि मेरा दुलारा असमर्थता अनुभव करे और मैं उसे अपना लूँ। असमर्थताका अनुभव होनेपर साधकको जो वेदना होती है, वह करुणामयसे सही नहीं जाती है।

साधन-सूत्र

[कुसंगसे व्यक्तिका नाश होता है]

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

भगवान् श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही हैं। सभी अयोध्यावासी बड़े ही आनन्दित हैं, शुभ मंगलाचारके साज सज रहे हैं। राजद्वारमें बड़ी भीड़ हो रही है। श्रीरामके बाल-सखा राजतिलकका समाचार सुनकर हृदयमें हर्षित होते हैं तथा दस-पाँच मिलकर श्रीरामके पास जाते हैं। प्रभु श्रीराम उनकी कुशल-क्षेम पूछते हैं। नगरमें सभीकी अभिलाषा है कि हम अपने कर्मवश भ्रमते हुए जिस-जिस योनिमें जनमें, वहाँ-वहाँ हम सेवक हों और सीतापति श्रीराम हमारे स्वामी हों तथा यह नाता अन्ततक निभ जाय।

परंतु रानी कैकेयीके हृदयमें बड़ी जलन हो रही है। मन्थराके फैलाये जालमें फँसकर वह कहती है—‘हे



सखी! संसारमें मेरा तेरे समान हितकारी और कोई नहीं है। तू मुझ बही जाती हुईके लिये सहारा हुई है।' कैकेयी कोपका सब साज सजकर कोपभवनमें सो जाती है और राज्य करती हुई भी वह अपनी दुष्ट बुद्धिसे नष्ट हो जाती है।

यहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज बड़ी ही

सुन्दर पंक्ति कहते हैं—

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥

(रा०च०मा० २।२४।८)

अर्थात् कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता।
नीचके मतके अनुसार चलनेसे चतुराई नहीं रह जाती।

कैकेयी राजा दशरथकी प्रिय रानी थी और रामको अपने पुत्र भरतसे भी अधिक प्रेम करती थी, किंतु मन्थराकी कुसंगतिमें आकर उसने अयोध्याका सुख छीन लिया। राजा दशरथका मरण हुआ। राम, लक्ष्मण, सीता चौदह वर्षके लिये वनवासको गये, भरतका कैकेयीसे विछोह हुआ, स्वयं कैकेयीके दुर्दिन आरम्भ हो गये। यह सब कैकेयीकी दुर्बुद्धिके कारण हुआ।

श्रीरामचरितमानसका ही एक अन्य प्रसंग है, रावणका सदाचारी भाई विभीषण रावणको समझाता है—‘हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि (अच्छी बुद्धि) और कुबुद्धि (खोटी बुद्धि) सबके हृदयमें रहती हैं, जहाँ सुबुद्धि है, वहाँ नाना प्रकारकी सम्पदाएँ (सुखकी स्थिति) रहती हैं और जहाँ कुबुद्धि है, वहाँ परिणाममें अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ (दुःखकी स्थिति) रहती हैं। आपके हृदयमें उलटी बुद्धि आ बसी है। इसीसे आप हितको अहित और शत्रुको मित्र मान रहे हैं।’ (रा०च०मा० ५।४०।५—७) रावण विभीषणको लात मारता है। विभीषण रावणका त्याग कर देते हैं तथा प्रभु श्रीरामकी शरणागतिमें चले जाते हैं। रावणने जिस क्षण विभीषणको त्यागा, उसी क्षण वह अभागा ऐश्वर्यसे हीन हो गया तथा सभी राक्षसोंकी मृत्यु निश्चित हो गयी।

विभीषण जब भगवान् श्रीरामकी शरणमें जाते हैं तो वे विभीषणकी कुशल-क्षेम पूछते हुए कहते हैं—
'हे तात! नरकमें रहना अच्छा है, परंतु विधाता दुष्टका संग कभी न दे।'

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

जो व्यक्ति उचित सलाह नहीं मानता है तथा कुसंगमें रहता है, उसका नाश अवश्यम्भावी है। रावणका पूरे कुलके साथ नाश हो गया।

श्रीमद्भागवतमें कान्यकुब्ज नगरके एक शास्त्रज्ञ ब्राह्मण अजामिलका चरित्र वर्णन हुआ है, जो शील, सदाचार और सद्गुणोंका खजाना था। वह ब्रह्मचारी, विनयी, जितेन्द्रिय, सत्यनिष्ठ, मन्त्रवेत्ता और पवित्र था। उसने गुरु, अग्नि, अतिथि और वृद्ध पुरुषोंकी सेवा की थी। वह समस्त प्राणियोंका हित चाहता, उपकार करता, आवश्यकताके अनुसार ही बोलता और किसीके गुणोंमें दोष नहीं ढूँढ़ता था। एक दिन वह अपने पिताके आदेशानुसार वनमें गया और वहाँसे फल-फूल, समिधा और कुश लेकर घर लौटा। लौटते समय उसने एक भ्रष्ट, कामी, निर्लज्ज शराबी शूद्रको किसी वेश्याके साथ दुराचरण करते देखा। अजामिल कामसे मोहित हो गया और उसकी सदाचार और शास्त्र-सम्बन्धी सभी चेष्टाएँ नष्ट हो गयीं। वह वेश्याका गुलाम हो गया और उसने अपनी कुलीन नवयुवती और विवाहिता पत्नीतकका परित्याग कर दिया। दासीके संसर्गसे दूषित होनेके कारण उसका सदाचार नष्ट हो चुका था। वह पतित कभी बटोहियोंको बाँधकर उन्हें लूट लेता, कभी लोगोंको जूएके छलसे हरा देता, किसीका धन धोखा-धड़ीसे ले लेता तो किसीका चुरा लेता। इस प्रकार अत्यन्त निन्दनीय वृत्तिका आश्रय लेकर वह अपने कुटुम्बका पेट भरता था और दूसरे प्राणियोंको बहुत ही सताता था।

भागवतके इस दृष्टान्तसे यह शिक्षा मिलती है कि श्रेष्ठ व्यक्ति भी कुसंग पाकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

गीतामें भगवान् कहते हैं—

‘अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।’
Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dh>
भगवान्‌ने हमें विवेक दिया है। उसके प्रकाशमें

देखना चाहिये कि हमारे लिये क्या उचित है तथा क्या अनुचित है? हमें सदैव श्रेष्ठ व्यक्तियों—सा आचरण करना चाहिये तथा कभी कुसंगमें नहीं पड़ना चाहिये। गलत आचरण होनेमें प्रधान कारण विषयोंकी आसक्ति ही है; आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है, कामनाकी पूर्तिसे लोभ और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है। सारे दुराचरणकी जड़ काम, क्रोध और लोभ ही हैं। इसीलिये भगवान्ने कहा है—‘काम, क्रोध और लोभ—ये तीन नरकके द्वार हैं; ये आत्माका नाश करनेवाले हैं, अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये।’

सांसारिक भोगोंकी आसक्ति एवं सांसारिक वस्तुओंके संग्रहकी रुचि महान् अनर्थकारी है। भोगोंकी आसक्ति एवं संग्रहकी रुचि कभी मिट नहीं सकती। ज्यों-ज्यों भोग भोगते जाते हैं, रुपयोंका संग्रह करते जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी रुचि बढ़ती जाती है—

‘जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।’

श्रीमद्भावगतमें वर्णन आता है कि राजा ययाति स्त्रीके वशमें होकर एक हजार वर्षतक विषयोंका भोग करते रहे, अपने पुत्रकी युवावस्थातक ले ली, तब भी उनकी विषय-भोगोंको भोगनेकी इच्छाका शमन नहीं हुआ। अन्ततः उनको भोगोंसे विरक्ति नहीं हुई। तब वे पश्चात्ताप करते हुए कहते हैं—‘पृथ्वीमें जितने भी धान्य (चावल, जौ आदि) सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं—वे सब-के-सब मिलकर भी उस पुरुषके मनको सन्तुष्ट नहीं कर सकते, जो कामनाओंके प्रहारसे जर्जर हो रहा है। विषयोंके भोगनेसे भोगवासना कभी शान्त नहीं हो सकती, बल्कि जैसे घीकी आहुति डालनेपर आग और भड़क उठती है, वैसे ही भोगवासनाएँ भी भोगोंसे प्रबल हो जाती हैं।’

हमें यह भी नहीं मानना चाहिये कि भोग और संग्रहकी रुचि नष्ट नहीं होती है। इतिहासमें सैकड़ों-हजारों ऐसे दृष्टान्त हैं, जिन्होंने भोगोंकी रुचिका नाश करनेके सम्बन्धमें आदर्श स्थापित किये हैं। स्वयं

कम एक बार उन्हें तीर्थदर्शनहेतु अवश्य ले जायँ तथा सप्ताह/माहमें एक बार किसी धार्मिक स्थलपर अवश्य ले जायँ।

९. पराश्रित एवं वृद्धावस्थाके कारण यथासम्भव आवश्यकतानुसार तन, मन, धनसे उनकी सेवा-शुश्रूषामें कोई कसर न छोड़ें। अपनेपर उन्हें भारस्वरूप न मानें, यथासम्भव उन्हें नौकर अथवा पड़ोसीके आश्रित न होने दें। उन्हें पूर्ववत् जीवन जीनेके लिये प्रोत्साहित करते रहें।

१०. प्रेम देकर प्रेम, शान्ति देकर शान्ति एवं मान देकर मान प्राप्त करें। घृणा देकर घृणाकी ओर न बढ़ें।

११. प्रेम एवं विश्वासके साथ नन्हें-मुन्नोंको उनकी गोदमें डालते रहें। कुछ समय पूर्वतक संयुक्त परिवार होनेके फलस्वरूप बच्चे दादा-दादीके हाथों ही पलते रहे हैं और आज भी एकल/सीमित परिवारके साथ जीवनकी भागमभागमें उनकी वही उपयोगिता है, जो उन्हें व्यस्त भी रखेगी और पारिवारिक प्रेमसे ओतप्रोत भी।

१२. सामयिक जाँचके अनुसार रुग्णावस्थामें उनका यथाशीघ्र, यथाशक्ति, यथासमय उपयुक्त उपचारका अविलम्ब प्रबन्धकर समयपर दवा देनेका काम स्वयं अथवा परिवारमें जो भी सदस्य प्रसन्नतापूर्वक इस दायित्वका तत्परताके साथ निर्वहन कर सके, उससे करवायें। अधिक अस्वस्थताकी स्थितिमें स्मरण-शक्तिका हास होता है, अतः औषधि लेना उनके भरोसे न छोड़ें।

अधिक रुग्णावस्थामें उन्हें अकेला न छोड़ें। परिवारका कोई भी प्राणी उनके पास बना रहे।

१३. खान-पान, वस्त्र आदिमें उनकी इच्छाका ध्यान रखें, पथ्यापथ्यके पूर्ण विचारके साथ उन्हें भोजन, दूध, नाश्ता नियमित एवं निर्धारित समयपर देना अपेक्षित है। प्रत्येक समय बिना माँगे उनकी समुचित इच्छाओंकी पूर्ति करनेका प्रयास करें, इससे वे अपने आपको गौरवान्वित अनुभवकर आशीषोंका पिटारा खोलते रहेंगे।

१४. भूलकर भी कटाक्ष एवं कटुतापूर्ण शब्दोंका आदान-प्रदानकर उन्हें अतीतकी ओर न धकेलें। दुखी न करें। अवस्थानुसार उनके स्वभावका ध्यान रखकर शान्त रहें। उनके द्वारा पारिवारिक सामंजस्यकी आशा न रखते हुए परिवारके सभी सदस्योंको उनके साथ धैर्यपूर्वक सामंजस्य बनाना होगा।

१५. उनकी वैयक्तिक सम्पत्तिपर आपका ही अधिकार है, ऐसा मानकर भी वे उसका जैसे भी सदुपयोग करें, करने दें। दान-पुण्य करें तो करने दें। परिवारके किसी भी सदस्य अथवा बाहरके प्राणी, संस्था आदिको दें तो सहर्ष उनका सहयोग ही करें, विरोध नहीं करें। इस विचारधाराके साथ आप भी पुण्यके भागी होंगे तथा परिवारके सभी प्राणी अनावश्यक मनमुटावसे बच जायँगे। यह सब कार्य कर्तव्य-बुद्धिसे करें, कोई अहसान समझकर नहीं।

सबमें आत्मभाव

हुगलीके सरकारी वकील स्वर्गीय शशिभूषण वन्द्योपाध्याय एक दिन वैशाखके महीनेमें दोपहरकी कड़कती लूमें एक किरायेकी गाड़ीमें बैठकर एक प्रतिष्ठित व्यक्तिके घर पहुँचे। वे एक आवश्यक कार्यसे आये थे। उनका वहाँ स्वागत हुआ। फिर उस व्यक्तिने पूछा—‘इस भयंकर दोपहरीमें आपने आनेका कष्ट क्यों किया? आप किसी नौकरके हाथ पत्र भेज देते तो भी यह काम हो जाता।’

श्रीशशिभूषणजीने कहा—‘मैंने पहले नौकरको ही भेजनेका विचार किया था और पत्र भी लिख लिया था; किंतु बाहरकी प्रचण्ड गरमी तथा लू देखकर मैं किसी भी नौकरको भेजनेका साहस नहीं कर सका। मैं तो गाड़ीमें आया हूँ, उस बेचारेको तो पैदल आना पड़ता। उसमें भी तो वही आत्मा है, जो मुझमें है।’

हमारी प्राचीन वैमानिक-कला

(श्रीदामोदरजी झा, साहित्याचार्य)

वर्तमान समयसे कुछ दिनों पूर्वतक वैमानिक कला प्रायः नष्ट-सी हो गयी थी। बादमें पाश्चात्य विद्वानोंके बुद्धिविकाससे विमान फिर इस संसारमें दिखायी देने लगे हैं। कहा जाता है कि विमान नामकी कोई वस्तु पहले नहीं थी, बल्कि पक्षियोंको आकाशमें उड़ते देखकर भारतीयोंकी यह निरी कपोल-कल्पना थी कि विमान नामकी कोई वस्तु पहले देशमें थी, जो आकाशमें उड़ती थी एवं जिसका उल्लेख रामायणादि ग्रन्थोंमें पाया जाता है। महर्षि कर्दमके विमानके विषयमें भी उनकी यही धारणा है; किंतु आज भी हमारे समक्ष उदाहरणार्थ एक ऐसा ग्रन्थरत्न उपस्थित है, जिससे यह मानना पड़ेगा कि विमानके विषयमें हमारे पूर्वजोंने जिस उच्च-कोटिका वैज्ञानिक तत्त्व ढूँढ़ निकाला था, उसे आज भी पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता खोज निकालनेमें असमर्थ ही हैं। वह ग्रन्थ है प्राचीनतम महर्षि भारद्वाजका बनाया हुआ 'यन्त्रसर्वस्व'।

यह ग्रन्थ बड़ौदा राज्यके पुस्तकालयमें हस्तलिखित वर्तमान है, जो कुछ खण्डित है। उसका 'वैमानिक प्रकरण' बोधानन्दकी बनायी हुई वृत्तिके साथ छप चुका है। इसके पहले प्रकरणमें प्राचीन विज्ञानविषयके पचीस ग्रन्थोंकी एक सूची है, जिनमें अगस्त्यकृत 'शक्तिसूत्र', ईश्वरकृत 'सौदामिनीकला', भारद्वाजकृत 'अंशुमत्तन्त्र', 'आकाशशास्त्र' तथा 'यन्त्रसर्वस्व', शाकटायनकृत 'वायुतत्त्वप्रकरण', नारदकृत 'वैश्वानरतन्त्र', 'धूमप्रकरण' आदि हैं। वृत्तिकार बोधानन्द लिखते हैं—

निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधि भारद्वाजो महामुनिः।

नवनीतं समुद्धृत्य यन्त्रसर्वस्वरूपकम्॥

प्रायच्छत् सर्वलोकानामीप्सितार्थफलप्रदम्।

तस्मिन् चत्वारिंशतिकाधिकारे सम्प्रदर्शितम्॥

नानाविमानवैचित्र्यरचनाक्रमबोधकम् ।

अष्टाध्यायैर्विभजितं शताधिकरणैर्युतम्॥

सूत्रैः पञ्चशतैर्युक्तं व्योमयानप्रधानकम्।

वैमानिकाधिकरणमुक्तं भगवता स्वयम्॥

अर्थात् भारद्वाज महामुनिने वेदरूपी समुद्रका मन्थन करके यन्त्रसर्वस्व नामका ऐसा मक्खन निकाला है, जो मनुष्यमात्रके लिये इच्छित फल देनेवाला है। उसमें उन्होंने चालीसवें अधिकरणमें वैमानिक प्रकरण कहा है, जिस प्रकरणमें विमानविषयक रचनाके क्रम कहे गये हैं। वह आठ अध्यायमें विभाजित किया गया है, जिसमें एक सौ अधिकार और पाँच सौ सूत्र हैं। उसमें विमानका विषय ही प्रधान है।

एवं विधाय विधिवन्मङ्गलाचरणं मुनिः।

पूर्वाचार्याश्च तद्ग्रन्थान् द्वितीयश्लोकतोऽब्रवीत्॥

विश्वनाथोक्तनामानि तेषां वक्ष्ये यथाक्रमम्।

नारायणः शौनकश्च गर्गो वाचस्पतिस्तथा॥

चाक्रायणिर्धुण्डिनाथश्चेति शास्त्रकृतः स्वयम्।

विमानचन्द्रिका व्योमयानतन्त्रस्तथैव च॥

यन्त्रकल्पो यानबिन्दुः खेटयानप्रदीपिका।

तथैव व्योमयानार्कप्रकाशश्चेति षट् क्रमात्॥

नारायणादिमुनिभिः प्रोक्तानि ज्ञानवित्तमैः॥

अर्थात् भारद्वाजमुनिने इस तरह विधानपूर्वक मंगलाचरण करके दूसरे श्लोकमें विमानशास्त्रके पूर्वाचार्यों तथा उनके बनाये हुए ग्रन्थोंके नाम भी कहे हैं। उनके नाम विश्वनाथके कथनानुसार इस प्रकार हैं—नारायण, शौनक, गर्ग, वाचस्पति, चाक्रायणि और धुण्डिनाथ। ये छः ग्रन्थकार हैं तथा विमानचन्द्रिका, व्योमयानतन्त्र, यन्त्रकल्प, यानबिन्दु, खेटयानप्रदीपिका और व्योमयानार्क-प्रकाश—ये छः क्रमसे इनके बनाये हुए ग्रन्थ हैं।

विमानकी परिभाषा बतलाते हुए कहा गया है—

पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषु खगवद्वेगतः स्वयम्।

यः समर्थो भवेद् गन्तुं स विमान इति स्मृतः॥

अर्थात् जो पृथ्वी, जल और आकाशमें पक्षियोंके

समान वेगपूर्वक चल सके, उसका नाम विमान है। उसका अनुभव होनेपर इच्छाके अनुसार नवीन विमानरचना करनी चाहिये।

‘रहस्यज्ञोऽधिकारी।’ (भरद्वाजसूत्र अ०१ सू०२)।

वृत्ति—

वैमानिकरहस्यानि यानि प्रोक्तानि शास्त्रतः।

द्वात्रिंशदिति तान्येव यानयन्तृत्वकर्मणि॥

एतेन यानयन्तृत्वे रहस्यज्ञानमन्तरा।

सूत्रेऽधिकारसंसिद्धिर्नैति सूत्रेण वर्णितम्॥

विमानरचने व्योमारोहणे चालने तथा।

स्तम्भने गमने चित्रगतिवेगादिनिर्णये॥

वैमानिकरहस्यार्थज्ञानसाधनमन्तरा ।

यतोऽधिकारसंसिद्धिर्नैति सम्यग्विनिर्णितम्॥

विमानके रहस्योंको जाननेवाला ही उसके चलानेका अधिकारी है। शास्त्रोंमें जो बत्तीस वैमानिक रहस्य बतलाये गये हैं, विमानचालकोंको उनका भलीभाँति ज्ञान रखना परमावश्यक है और तभी वे सफल चालक कहे जा सकते हैं। सूत्रके अर्थसे यह सिद्ध हुआ कि रहस्य जाने बिना मनुष्य यान चलानेका अधिकारी नहीं हो सकता; क्योंकि विमान बनाना, उसे जमीनसे आकाशमें ले जाना, खड़ा करना, आगे बढ़ाना, टेढ़ी-मेढ़ी गतिसे चलाना या चक्कर लगाना और विमानके वेगको कम अथवा अधिक करना आदि वैमानिक रहस्योंका पूर्ण अनुभव हुए बिना यान चलाना असम्भव है।

विमान चलानेके जो बत्तीस रहस्य कहे गये हैं, उनमेंसे कुछ रहस्योंका यहाँ संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जा रहा है, जिनके द्वारा यह ज्ञात होता है कि पाश्चात्य विद्वानोंकी वैज्ञानिक कला प्राचीन भारतकी वैज्ञानिक कलासे कितनी पिछड़ी हुई है।

‘कृतकरहस्यो नाम—विश्वकर्मछाया-पुरुषमनु-मयादिशास्त्रानुष्ठानद्वारा तत्तच्छक्त्यनुसन्धान-पूर्वकं तात्कालिकसङ्कल्पानुसारेण विमानरचनाक्रमरहस्यम्।’

अर्थात् उन बत्तीस रहस्योंमेंसे यह कृतक नामक तीसरा रहस्य है। विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु, मयदानव आदि विमानशास्त्रकारोंके बनाये हुए शास्त्रोंका अनुशीलन करनेसे उन-उन धातु-क्रिया आदिमें जो सामर्थ्य है—

‘गूढरहस्यो नाम—वायुतत्त्वप्रकरणोक्त-रीत्या वातस्तम्भाष्टमपरिधिरेखापथस्य यासावियासाप्रयासा-दिवातशक्तिभिः सूर्यकिरणान्तर्गततमश्शक्ति-माकृष्य तत्संयोजनद्वारा विमानाच्छादनरहस्यम्।’

अर्थात् गूढ नामक पाँचवाँ रहस्य है। वायुतत्त्व-प्रकरणमें कही गयी रीतिके अनुसार वातस्तम्भकी जो आठवीं परिधिरेखा है, उस मार्गकी यासा, वियासा, प्रयासा इत्यादि वायुशक्तियोंके द्वारा सूर्यकिरणमें रहनेवाली जो अन्धकारशक्ति है, उसका आकर्षण करके विमानके साथ उसका सम्बन्ध करानेपर विमान छिप जाता है।

‘अपरोक्षरहस्यो नाम—शक्तितन्त्रोक्त-रोहिणीविद्युत्प्रसारणेन विमानाभिमुखस्थवस्तूनां प्रत्यक्षनिदर्शनक्रियारहस्यम्।’

अर्थात् अपरोक्ष नामक नवें रहस्यके अनुसार शक्तितन्त्रमें कही गयी रोहिणी विद्युत् (विशेष प्रकारकी बिजली)—के फैलानेसे विमानके सामने आनेवाली वस्तुओंको प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

‘सार्पगमनरहस्यो नाम—दण्डवक्रादिसप्त-विधमातरिश्वार्ककिरणशक्तीराकृष्य यानमुखस्थ-वक्रप्रसारणकेन्द्रमुखे नियोज्य पश्चात्तदाहृत्य शक्त्यु-द्गमननाले प्रवेशयेत्। ततः तत्कीलीचालनाद्विमानस्य सर्पवद्गमनक्रियारहस्यम्।’

अर्थात् सार्पगमन नामक बाईसवें रहस्यके अनुसार दण्ड, वक्र आदि सात प्रकारके वायु और सूर्यकिरणोंकी शक्तियोंका आकर्षण करके यानके मुखमें जो तिरछे फेंकनेवाला केन्द्र है, उसके मुखमें उन्हें नियुक्त करके पश्चात् उसे खींचकर शक्ति पैदा करनेवाले नालमें प्रवेश कराना चाहिये; तब उसके बटन दबानेसे विमानकी गति साँपके समान टेढ़ी हो जाती है।

‘परशब्दग्राहकरहस्यो नाम—सौदामनीकलोक्त-प्रकारेण विमानस्थशब्दग्राहकयन्त्रद्वारा परविमानस्थ-जनसंभाषणादिसर्वशब्दाकर्षणरहस्यम्।’

इस वैमानिक प्रकरणमें कहे गये ग्रन्थ और ग्रन्थकारोंके नामसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वज विमानशास्त्रमें अत्यन्त निपुण थे। इसके रहस्योंको देखनेसे यह पता लगता है कि आजकलके वैज्ञानिक विमानद्वारा जिन-जिन कलाओंका उपयोग करते हैं, वे सभी कलाएँ तो उन लोगोंके पास थीं ही, बल्कि जिन कलाओंकी खोजमें आज आधुनिक वैज्ञानिक व्यस्त हैं या जिनकी कल्पना भी अभी वे नहीं कर पाये हैं, उनको भी हमारे पूर्वज जानते थे। नवें रहस्यसे यह पता लगता है कि दूरबीनकी तरह कोई दूरदर्शक यन्त्र उनके पास था। पचीसवें रहस्यसे यह सिद्ध होता है कि 'वायरलेस', रेडियो भी उनके पास था। अट्ठाईसवाँ रहस्य बतलाता है कि आजकलके वैज्ञानिकोंकी तरह दूरसे ही शत्रुविमानका पता लगा लेनेकी कला भी उनके पास थी। बत्तीसवें रहस्यसे यह स्पष्ट है कि जैसे ये लोग गैस, बम आदिद्वारा शत्रु-संहार करते हैं, वैसे ही वे लोग भी ऐसे शस्त्रास्त्रोंका उपयोग करते थे। छब्बीसवें रहस्यसे मालूम होता है कि आजके वैज्ञानिकोंने टेलीफोनपर बात करनेवालेकी आकृति दिखा देनेवाले 'टेलीविजन' नामक जिस यन्त्रका आविष्कार किया है, वह इससे अधिक चमत्कारिक रूपमें हमारे पूर्वजोंके पास था। इसमें जो विमानोंको अदृश्य करनेवाला पाँचवाँ रहस्य है तथा उसके सदृश अन्य कई रहस्य हैं जो कि विस्तारभयसे यहाँ उद्धृत नहीं किये गये हैं, उन सबके विषयमें आजके वैज्ञानिक हमारी समझमें अभीतक सोच भी नहीं सके हैं। 'सिद्धान्त'

इनका अर्थ इस प्रकार है—तब महादेवजीने हँसकर

इन सच्ची बातोंको माननेका प्रभाव होगा—परम शान्ति, जीवन्मुक्ति, भगवद्भक्ति, भगवत्प्रेम। यही मानव जीवनकी पूर्णता है।

कहानी—

समाजकी सेवा

(श्री 'चक्र')

[१]

वे विद्यापीठके स्नातक हैं। विद्यापीठकी शिक्षाकी सफलता ही है समाज-सेवामें। देश-सेवाकी प्रबल प्रेरणाने ही इस संस्थाकी नींव रखी और देशके स्वाधीनता-संग्राममें इसके शिक्षकों एवं छात्रोंने कितना बलिदान किया, यह तो देश भली प्रकार जानता ही है। वे उस गौरवमयी संस्थाके स्नातक हैं। देश-सेवा उनका स्वभावगत गुण होना ही चाहिये।

दुबला-पतला साँवला शरीर, हँसता-सा गोल मुख, घुँघराले सँवारे केश, नेत्रोंपर चश्मा, कलाईमें बँधी घड़ी, पैरोंमें चप्पल—दूध-सी उजली सफेद खादी तो समाज-सेवकका पवित्र वस्त्र है। आप उन्हें एक बार देख लें तो सहज ही भूल नहीं सकते। बड़ा मिलनसार स्वभाव है। बड़ी विलक्षण प्रतिभा है। वक्तृत्व-शक्तिकी तो पूछिये ही मत। जिसमें वक्ता बननेकी योग्यता नहीं होगी, वह समाजकी सेवा कैसे करेगा। वे तो साधारण बातचीतमें भी चुटकियाँ लेते, उपदेश देते, व्याख्यानसे ही देते चलते हैं।

बलिदान—देशके लिये बलिदानकी पुकार गूँजती थी उनके कानोंमें। आज नहीं गूँजती सो मैं नहीं कहता; किंतु उस समय युग ही दूसरा था। लाठी, गोली, जेल—विदेशी सरकार अपनी पूरी शक्तिसे दमनपर उतर आयी थी। देशने चुनौती स्वीकार कर ली थी। वे उस समय एक पूरे जिलेके आन्दोलनका नेतृत्व कर रहे थे। पूरे तीन बार उन्हें जेल जाना पड़ा। कोई ऐसी कठिनाई नहीं, जिसे उन्होंने न उठाया हो।

आजकी बात अब दूसरी है। आज वे चाहते तो किसी उच्च पदपर होते। मित्रोंने उनसे चुनावमें खड़े होनेका आग्रह भी किया था और सफलता तो निश्चित ही थी। वे प्रारम्भसे विचित्र स्वभावके रहे हैं। मित्रोंको उन्होंने दो टुक उत्तर दे दिया—“मैं शासक नहीं, सेवक

रहा हूँ। सेवक ही रहना चाहता हूँ।’

‘वहाँ आप अधिक सेवा कर सकेंगे।’ यह तर्क भी आया था। इसकी उपयोगिता और महत्ता वे न समझते हों, ऐसा नहीं है; किंतु उनका निश्चय कभी ढीला नहीं पड़ा करता। उनका दृष्टिकोण भी महत्त्वपूर्ण है— ‘जनताको अधिकारियोंसे भी अधिक उस सेवककी अपेक्षा है, जो उसके बीच रहकर उसकी सेवा करे।’

‘जनताके बीच रहकर जनताकी सेवा।’ यहाँसे वहाँ दौरा करने और व्याख्यान देनेको ही तो जन-सेवा कहा जाता है। समाजकी सेवाका दूसरा क्या रूप हो सकता है? यह रूप आवश्यक नहीं है, महत्त्वपूर्ण नहीं है, यह कहेगा भी कौन।

‘जनताको, देशको आज नेता नहीं, अच्छे नागरिक चाहिये।’ उन्होंने स्वयं भी अपने सम्मान्य नेताकी इस पुकारको कई बार दुहराया है। आज ही क्यों उनके मनमें यह आ रहा है—‘तू भी तो नेता है?’ ‘आपलोग सेवक हैं या नेता?’ एकने एक दिन पूछा था उनसे ‘यह सेवकका वेश है? आप क्या सोचते हैं कि व्याख्यान देते घमनेसे समाजकी सेवा हो जाती है?’

‘हमारी सेवा साधारण घरेलू सेवकसे दूसरे प्रकारकी है?’ उस दिन उन्होंने हँसकर उत्तर दे दिया था—‘हम स्वच्छता, सावधानी, अनुशासन, विद्याका प्रचार करते हैं। स्वयं हम इन्हें न रखें तो लोग सीखेंगे कैसे? हम जनताके विचारोंको जाग्रत् एवं परिमार्जित करते हैं। ठीक दिशा दिखाना और उधर चलनेकी प्रेरणा देना हमारा काम है। यही हमारी सेवा है। जन-जागरणसे अधिक महत्त्वकी समाज-सेवा और क्या होगी?’

कोई उनसे बहस करके कहाँ पार पा सकता है। लोगोंके अटपटे तर्कोंका उत्तर देना तो उनकी सेवाका एक मुख्य अंग ही है, लेकिन बूढ़े महात्माजीने जो आत्मनिरीक्षण, आत्मशोधनकी प्रबल प्रेरणा दी थी—

किसी दूसरेने उसे कितना ग्रहण किया, यह कहना तो कठिन है; किंतु उन्होंने उसे बड़ी गम्भीरतासे ग्रहण किया था। वह प्रेरणा ही उन्हें राजनीतिक क्षेत्रमें ले आयी थी, यह कहना कुछ असंगत नहीं होगा। समाज-सेवाको उन्होंने एक साधन माना था आत्मशुद्धिका। वे देश-सेवा—जनता-जनार्दनकी सेवा करने आये थे। वह आत्मशोधनकी प्रेरणा उनके भीतर कभी मन्द भले पड़ी हो, प्रसुप्त नहीं हुई और आज पता नहीं क्यों वह जग पड़ी है।

‘व्याख्यान देनेसे ही समाजका कल्याण हो जायगा ? यही समाज-सेवा है ?’ एक दिन ऐसे प्रश्नोंका वे हँसकर उत्तर देते थे। आज जब कोई प्रश्नकर्ता नहीं है, आज जब सर्वत्र उनके स्वागतमें भीड़ जयध्वनि करती, मालाएँ सजाये खड़ी रहती हैं, यह प्रश्न उनके मनमें प्रबल क्यों होता जा रहा है ? उनके भीतर बैठकर कौन उनसे इतने तीखे स्वरमें बार-बार पूछता है, इसका कोई समाधान वे कर नहीं पाते।

‘हम स्वच्छता, सावधानी, अनुशासनका प्रचार करते हैं। हम स्वयं इन्हें न रखें तो लोग सीखेंगे कैसे।’ आज उनका यह स्वयंका उत्तर जैसे उनके मस्तिष्कमें धधककर जल उठा है।

‘कितनोंने हमारे व्याख्यानोसे स्वच्छताकी शिक्षा ली ? कितनोंने सावधानी सीखी ? कितनोंने अनुशासनका पालन करना अपनाया ?’ निराशासे सिर झुक गया उनका ।

‘स्वयंसेवक मेरे-जैसे बाल रखते हैं। मेरे समान नंगे सिर रहते हैं। यही चप्पल पहनते हैं। यह घड़ी न सही—घड़ी बाँधते हैं।’ उन्होंने कभी इस बातपर गर्व किया था कि लोग रहन-सहनमें उनका अनुकरण करने लगे हैं। उनके-जैसी धोती पहनना, वैसा ही कुरता बनवाना, कुर्तेके ऊपरका बटन उन्हींके समान खुला रखना—अब तो ग्रामोंके साधारण लोग भी कुछ बातोंमें उनका अनुकरण करते हैं।

‘उनमें अनेक त्रुटियाँ हैं। वे बोलनेमें कुछ गर्दन एक ओर झुकाकर बोलते हैं, चलनेमें हाथ अधिक हिलाते हैं। हाथ धोनेमें…………रहने दीजिये त्रुटियोंकी बात। त्रुटियाँ किसमें नहीं होतीं; किंतु यह है क्या? उनकी त्रुटियाँ इतनी व्यापक क्यों होती जा रही हैं? लोग त्रुटियोंमें उनकी ठीक-ठीक क्यों नकल करते हैं?’

‘मैं क्या कर रहा हूँ? मुझसे समाजकी कौन-सी सेवा हो रही है?’ वे सिर पकड़कर बैठ गये हैं आज। ‘उनके उपदेशों, व्याख्यानोंका क्या प्रभाव? उन्होंने समाजको दोष—अपने दोष ही तो बाँटे। लोगोंने उनके दोष-ही-दोष लिये!’

व्यापक—व्यापक होते जा रहे हैं उनके दोष। जैसे सम्पूर्ण दिशाएँ, पूरा आकाश मैला, घिनौना होता जा रहा है उनके दोषोंसे। उन्होंने नेत्रोंपर हाथ रख लिये। कोई वज्र-कर्कश स्वरमें पूछ रहा है उनसे—‘तू समाजका सेवक है? समाजकी सेवा की है तूने? यही है तेरी समाज-सेवा?’

क्या उत्तर है उनके पास। उनके नेत्र आज इस
एकान्तमें टपाटप बँदें गिराते जा रहे हैं।

\times \times \times

[२]

वह भी विद्यापीठका स्नातक है। बूढ़े महात्माजीकी वाणीपर उसकी निष्ठा विद्यापीठमें प्रवेश करनेसे बहुत पहलेसे रही है। महात्माजीकी अहिंसा और आत्मशोधनकी प्रेरणाने उसे भी बहुत आकर्षित किया। आत्मशुद्धिकी धुन उसकी बहुत पुरानी है।

दुबला-पतला कुछ ललाई लिये गेंहुआँ गोरा शरीर, गम्भीर गोल मुख, घुटा सिर, बड़ी-सी चुटिया, नंगे बिवाईभरे पैर, खादीका मटमैला कुर्ता, खूब मोटी कुछ मैली धोती—उसे विद्यापीठमें उसके सहपाठी सदा चिढ़ाते रहे हैं। अर्थशास्त्र और राजनीतिके बदले वह दर्शनशास्त्र और संस्कृतका छात्र था। चमड़ेकी चप्पलके स्थानपर लकड़ीकी चट्टियाँ पहनता था। उसकी चुटिया

और जनेऊका बड़ा उपहास हुआ, लेकिन बड़ा गम्भीर है वह। बहुत कम हँसता है। जब धीरेसे तनिक-सा हँसता है—जैसे मोती बिखर पड़े हों। उसकी गम्भीरता ऐसी है कि उसका उपहास करके उपहास करनेवाला ही संकुचित हो उठता है। वह पूरे विद्यापीठ-जीवनमें वैसे-का-वैसा ही रहा आया था। उसकी एक मण्डली बन गयी थी धीरे-धीरे। यह उसीकी गम्भीरताका प्रभाव था कि विद्यापीठमें भी कुछ दिन कुछ छात्र बड़ी चुटिया रखने और सन्ध्या करने लगे थे।

समाजकी सेवा आत्मशुद्धिका साधन है, यह बात उसे कुछ ठीक-ठीक जमी नहीं, लेकिन महात्माजीने देश-सेवा, समाज-सेवाकी प्रेरणा दी, वह प्रेरणा उसके हृदयमें भी बस गयी थी, लेकिन वह वक्ता नहीं है। वह तो साधारण बातचीतमें भी शब्दोंको इतना तौल-तौलकर मुखसे निकालता है, जैसे कोई बहुत बड़ी सम्पत्ति व्यय कर रहा हो। दस शब्दका काम चारमें चल सके तो वह साढ़े चार बोलनेवाला नहीं। जो वक्ता नहीं, वह भला नेता कैसे होगा और जो नेता नहीं, पुलिस उसके पीछे कभी क्यों पड़ेगी। देशके इतने महान् संघर्षमें भी उसकी बात किसीने नहीं पूछी। वह जेल नहीं गया, उसे किसीने एक धक्कातक नहीं दिया। आज जब चारों ओर धूम है, आज भी उसे कोई पूछनेवाला नहीं। वह कभी नेता तो था ही नहीं।

विद्यापीठसे वह अपने घर चला आया। घरपर खेतीके काममें जुट गया। वह कुट्टी काटता है, घास छीलता है, खेतमें खाद अपने सिरपर उठाकर ले जाता है। विद्यापीठका स्नातक है वह, यह तो जाननेवाले जानते हैं। एक उद्योगी किसान है वह, यह देखते ही समझा जा सकता है।

दोपहर-विश्रामके समय वह चर्खा चलाता है। घरमें उसने चर्खे लाकर रख दिये हैं। अपने खेतमें उसने थोड़ी रूई बोना प्रारम्भ कर लिया है। रूईमें अच्छी आमदनी है। घरमें चर्खे चले तो बाजारसे कपड़े सस्ता

लेने पड़ते। पड़ोसियोंने यह झटपट अनुभव कर लिया है। उसके गाँवके किसान अब रूई बोने लगे हैं। उसे अब एक घण्टे रोज उन लोगोंको चर्खा चलाना सिखाना पड़ता है, जो उसके पास बड़े आग्रहसे सीखने आते हैं।

कभी-कभी वह आसपासकी गलियाँ झाड़ देता है। गाँवमें लोग पता नहीं; क्यों उसका सम्मान करने लगे हैं। सम्भवतः इसलिये कि नित्य सायंकाल वह पीपलके नीचे बैठकर लोगोंको रामायण सुनाता है। लोगोंको कहता है—‘तुम अपने आप पढ़ो तो कितना आनन्द आये। यह तो रामजीकी कथा है।’ बड़े-बूढ़े भी अब उससे क, ख पढ़ते हैं। भोजनके बाद रात्रिमें उसकी पाठशाला लगती है। अब लोग इधर-उधर कूड़ा डालते डरने लगे हैं—‘पाँड़ेजी यहाँ कूड़ा देखेंगे तो झाड़ू लेकर जुट पड़ेंगे’ उसका पूरा गाँव सदा स्वच्छ रहता है।

वह सबेरे एक मील जाकर गंगा-स्नान करता है। सन्ध्या करता है। गीताका पाठ करता है। गाँवके युवक और बालक तो क्या तरुण और वृद्ध भी इस प्रयत्नमें रहते हैं कि पाँड़ेजी कहीं स्नान करने पहले न निकल जायँ। 'देखा-देखी पाप, देखा-देखी पुण्य' सो गाँवमें तो जैसे अब सभी गंगास्नान, सन्ध्या, पूजा करनेवाले हो गये हैं। जो गीता-पाठ नहीं कर सकते वे रामायण या हनुमानचालीसा ही लेकर शंकरजीको सुना आते हैं। स्त्रियोंकी चर्चा मत कीजिये, उनमें तो पहलेसे सृष्टिकर्तानि श्रद्धा बाँटते समय बड़ा भाग दे रहा है। अब तो गाँवके हलवाहेतक पहले स्नान करके सूर्यभगवान्को एक लोटा जल चढाते हैं और तब मुँहमें दाना डालते हैं।

जहाँ चार बर्तन होते हैं, वहाँ खनकते भी हैं। गाँवमें झगड़े भी होते हैं। कचहरीकी बात बहुत दूर चली गयी। पाँड़ेजीके पास भी बहुत कम झगड़े आते हैं। बहुत-से झगड़ोंका निपटारा तो इतनेमें हो जाता है—‘चल, पाँड़ेजीके पास चलता हूँ।’

‘भैया रहने दो! अब पाँडेजीके यहाँ ले जाकर क्यों
— MADE WITH LOVE BY Avinash/Shah

पाँड़े क्या उत्तर देते हैं, इसके बदले उनका ध्यान लोगोंकी ओर अधिक था। उनके नेत्र चारों ओर घूम रहे थे। जहाँ पहुँचना, वहाँकी अधिक-से-अधिक परिस्थितिको समझ लेनेके वे पुराने अभ्यासी हैं। उनके नेत्रोंको छोटी-छोटी बातोंके निरीक्षणका अभ्यास है। लेकिन यहाँ उन्हें आश्चर्य हो रहा है—‘कोई पाँड़ेकी त्रुटियोंकी नकल करता उन्हें नहीं लगता। पाँड़े चलनेमें आगे झुककर चलते हैं, उनके कुर्तेकी दो-एक बटन टूटी ही रहती हैं, बोलते समय वे प्रायः अपने बायें हाथकी अँगुलियाँ समेटकर मुट्ठी बना लेते हैं, लेकिन दूसरोंमें उन्हें तो कोई नहीं दीखता, जिसमें ये बातें आयी हों। लोग पाँड़ेको कितना सम्मान देते हैं, यह तो वे देख रहे हैं; परंतु उनकी त्रुटियाँ व्यापक नहीं हुई, इसका कारण? यह कारण उनकी समझमें आ नहीं रहा है।’

मित्र कहते हैं—‘उन्होंने अपना मान खो दिया, लेकिन अब उनसे व्याख्यान नहीं दिये जाते। अब तो वे एकान्तमें आ गये हैं। वे अपने भीतर देखनेमें लगे हैं आजकल। वे समाजकी सेवामें अभी ही ठीक लग पाये हैं’ यह बात क्या ठीक नहीं है?

साधनोपयोगी पत्र

(१)

जो कुछ है, सब भगवान्‌का है

सम्मान्य महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। आपने जो लिखा, उसके उत्तरमें क्या लिखा जाय? मनुष्य यदि दूसरेके दुःखको अपना दुःख मानने लगे तो जगत्‌का बहुत-सा दुःख दूर हो जाय, परंतु इधर मनुष्यकी उदासीनता ही है, बल्कि आजके जगत्‌में तो हम बहुत-से लोग दूसरेके दुःखको अपना सुख बनाते हैं। यह बड़ी दयनीय स्थिति है! सच तो यह है कि मनुष्यके पास जो कुछ है, वह सारा-का-सारा प्रभुका है और प्रभुकी सेवाके लिये है। उसे वह यदि अपना मानता है तो सचमुच बेईमान और चोर है। श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट आया है कि 'जितनेसे पेट भरे, उतनेपर ही अपना अधिकार है। उससे अधिकपर अधिकार माननेवाला चोर है और उसे दण्ड मिलना चाहिये।' यह भागवतके सातवें स्कन्धमें नारदजीका वचन है। आपसे मेरा यही निवेदन है कि आपके पास धन, बल, विद्या, बुद्धि—जो कुछ भी है, अगर आप अपना कल्याण चाहते हैं तो उसे भगवान्‌का और भगवान्‌की सेवाके लिये ही मिला हुआ मानिये और उसे भगवान्‌की सेवामें ही समर्पित कर दीजिये। उसपरसे अपना अधिकार हटाकर उसे भगवान्‌का बना दीजिये तथा प्राणि-पदार्थोंपरसे अपनी ममता हटाकर ममता एकमात्र श्रीभगवान्‌में ही कीजिये, आपको अवश्य शान्ति मिलेगी। सांसारिक पदार्थोंमें न तो किसीको आजतक शान्ति मिली और न मिल सकती है—यह ध्रुव सत्य है। जितना ही सांसारिक वैभव बढ़ेगा, उतनी ही चिन्ताकी ज्वाला बढ़ेगी तथा आप उसमें झुलसते रहियेगा। शान्ति-सुख केवल भगवच्चरणारविन्दमें ही है और कहीं नहीं। उन्हींका आश्रय लीजिये और उन्हींमें ममता कीजिये। इसके सिवा और कुछ भी शान्तिका साधन नहीं है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

आर्त-प्रार्थना करो

प्रिय भाई! सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला तुम्हारे दुःखसे मुझे भी बड़ा दुःख है। मैं चाहता हूँ, तुम दुःखसे मुक्त हो जाओ, परंतु यह मेरे हाथकी बात नहीं है। तुम्हारे सद्भावके प्रति मेरे मनमें बड़ा आदर है, परंतु मैं तुम्हें यह विश्वास कभी नहीं दिला सकता कि 'मैं ऐसा कोई चमत्कार कर दूँगा, जिससे रातों-रात तुम्हारा संकट टल जायगा और तुम अपने मनोरथके अनुसार उच्च स्थितिको प्राप्त हो जाओगे।' कोई यदि किसीको ऐसा विश्वास दिलाता है कि 'मैं जादूकी तरह तुम्हारी स्थिति बदल दूँगा तो वह या तो स्वयं भ्रममें है या ठग है।'

इसका यह तात्पर्य नहीं कि महात्मा पुरुषोंमें ऐसी क्षमता होती ही नहीं। होती है, पर वैसे पुरुष संसारमें इस समय बहुत थोड़े हैं और कोई हैं तो वे भगवान्‌के मंगलमय विधानको बदलनेका आग्रह नहीं करते। वे भगवान्‌के मंगलमय विधानमें विश्वास करते हैं और वे इस बातको भलीभाँति जानते हैं कि यहाँका हानि-लाभ वास्तवमें हानि-लाभ है ही नहीं। वे महापुरुष जिस स्तरपर रहते हैं, उस स्तरसे यहाँके समस्त परिवर्तनोंमें उन्हें भगवान्‌की लीला-माधुरी दिखायी देती है। उसमें न दुःख है, न शोक, न विनाश है, न हानि है—है केवल विविध विचित्र भंगिमाओंमें भगवान्‌का आत्मप्रकाश, उनका लीलाविलास। ऐसी अवस्थामें वे कौन-सी हानिको लाभमें परिवर्तित करने जायँगे। उनको तो प्रत्येक स्थितिमें भगवान्‌के मधुर पद-निक्षेपसे झंकृत मधुर नुपुंरोंकी ध्वनि सुनायी देती है। अतएव उन महापुरुषोंके द्वारा पारमार्थिक कल्याणके सिवा लौकिक लाभकी आशा नहीं रखनी चाहिये। तुम स्वयं भी ऐसा ही कहा करते हो, परंतु तुम्हारा भी दोष क्या है। बुद्धिमें अभीतक विषय-सुखका विश्वास बना हुआ है और

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

हृदयमें मान-प्रतिष्ठा, नामकी इज्जत, शरीरके आराम और बहुत ऊँचे स्टाइलपर रहनेकी कामना प्रबल है। इसीसे तुम जब अनुचित साधनोंसे भी संकट टालने और सुख प्राप्त करनेकी बात सोचते हो, तब किसी महात्माके द्वारा काम हो जाय तो बड़ा उत्तम है—यह सोचना स्वाभाविक ही है, परंतु न तो मैं महात्मा हूँ और न मेरी दृष्टिमें ऐसे कोई महात्मा ही हैं, जिनका नाम तुम्हें बता सकूँ या जिनसे तुम्हारे लिये मैं अनुरोध कर सकूँ। यह मैंने तुमको स्पष्ट इसलिये लिखा है कि इस झूठी आशाके कारण तुमको दुखी न होना पड़े।

मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जबतक मनुष्य संसारके प्राणि-पदार्थोंसे सुखकी आशा रखता है और अनुकूल रूपसे उनकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहता है, तबतक उसे सुख-शान्ति मिल ही नहीं सकती। संसारमें संसारके पदार्थोंको लेकर आजतक न तो कोई सुखी हुआ है, न हो सकता है। तथापि जबतक यह सत्य मनुष्यकी समझमें नहीं आता, तबतक उसे अनुकूल स्थितिकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना ही पड़ता है। परंतु कम-से-कम यह प्रयत्न ऐसा तो होना चाहिये, जो नयी दुर्गतिका कारण न बने। वह निर्दोष प्रयत्न है—एकनिष्ठ होकर भगवान्से प्रार्थना करना, जैसे द्रौपदी, गजराज आदिने की थी। मेरी तुच्छ बुद्धिके अनुसार भगवान्से प्रार्थना करनेवालेकी दुर्गति होती ही नहीं, उसकी अभीष्ट सिद्धि भी सहज ही हो सकती है; अथवा भगवान्की

कृपासे उसका हृदय ही विषय-कामनाकी गन्दगीसे शुद्ध हो जा सकता है। अतएव भैया! तुम कातर हृदयसे विश्वासपूर्वक आर्त-प्रार्थना करो। इससे अच्छी सलाह मैं और दे ही नहीं सकता; क्योंकि मुझे इससे अच्छे किसी साधनकी न तो जानकारी है और न मेरा विश्वास ही है।

यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवान् मंगलमय हैं, अतएव उनका प्रत्येक विधान भी मंगलमय है। यदि वे समझेंगे कि अमुक स्थितिकी प्राप्ति होनेपर हमारा अकल्याण होगा तो हमारे चाहने और प्रार्थना करनेपर भी वे उस स्थितिकी प्राप्ति नहीं होने देंगे और वास्तवमें उसीमें हमारा कल्याण भी होगा।

तुम्हारे संकटसे नहीं, परंतु तुम्हारे इस संकटजनित मानस-दुःखको देखकर कई बार मेरे चित्तमें बड़ी उद्विग्नता हो जाती है, पर फिर जब मंगलमय भगवान्की सहज सुहृदताका ध्यान आता है, तब यह जानकर सन्तोष हो जाता है कि वे तुम्हारा अमंगल तो होने देंगे ही नहीं, वे जो कुछ भी विधान करेंगे, वह प्रतिकूल दीखनेपर भी परिणाममें होगा तो मंगल करनेवाला ही।

घबराओ मत, प्रभुकी कृपापर विश्वास करो और जहाँतक बने, असत्-पथका आश्रय न लेकर विपत्तिनाशके लिये भगवान्से आर्त-प्रार्थना करो। भगवान् तुम्हारा मंगल करेंगे। शेष भगवत्कृपा।

आवरणचित्र-परिचय

[श्रीभरतजीद्वारा श्रीरामचरणपादुकाओंका पूजन]

राम पेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति।

चातक हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति॥

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई । घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई ॥

नित नव राम प्रेम पनु पीना । बढत धरम दलु मनु न मलीना ॥

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे । बिलसत बेतस बनज बिकासे ॥

सम दम संजम नियम उपासा । नखत भरत हिय बिमल अकासा ॥

ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी । स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी ॥

राम पेम बिधु अचल अदोषा । सहित समाज सोह नित चोखा ॥

भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ॥

बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं । सेस गनेस गिरा गमु नाहीं ॥

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।

मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ९।१ बजेतक	मंगल	विशाखा दिनमें ११।१४ बजेतक	५ मई	× × ×
द्वितीया " ९।९ बजेतक	बुध	अनुराधा " ११।५९ बजेतक	६ "	भद्रा रात्रिमें ८।५८ बजेसे, मूल दिनमें ११।५९ बजेसे।
तृतीया " ८।४७ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा " १२।१५ बजेतक	७ "	भद्रा दिनमें ८।४७ बजेतक, धनुराशि दिनमें १२।१५ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।२९ बजे।
चतुर्थी " ७।५५ बजेतक	शुक्र	मूल " १२।१ बजेतक	८ "	मूल दिनमें १२।१ बजेतक।
पंचमी प्रातः ६।३७ बजेतक	शनि	पू० षा० " ११।२३ बजेतक	९ "	भद्रा रात्रिशेष ४।५८ बजेसे, मकरराशि सायं ५।८ बजेसे।
षष्ठी रात्रिशेष ४।५८ बजेतक				
सप्तमी रात्रिमें २।५९ बजेतक	रवि	उ० षा० " १०।२५ बजेतक	१० "	भद्रा दिनमें ३।५९ बजेतक, भानुसप्तमीपर्व।
अष्टमी " १२।४७ बजेतक	सोम	श्रवण " ९।९ बजेतक	११ "	कुम्भराशि रात्रिमें ८।२५ बजेसे, कृत्तिकाका सूर्य रात्रिमें २।४० बजे, पंचकारम्भ रात्रिमें ८।२५ बजे।
नवमी " १०।२५ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा " ७।४० बजेतक	१२ "	× × ×
दशमी रात्रिमें ७।५७ बजेतक	बुध	शतभिषा प्रातः ६।२ बजेतक	१३ "	भद्रा दिनमें ९।१० बजेसे रात्रिमें ७।५७ बजेतक, मीनराशि रात्रिमें १०।४७ बजेसे।
		पू०भा० रात्रिशेष ४।२२ बजेतक		
एकादशी सायं ५।३० बजेतक	गुरु	उ० भा० रात्रिमें २।४४ बजेतक	१४ "	अचला एकादशीव्रत (सबका), मूल रात्रिमें २।४४ बजेसे।
द्वादशी दिनमें ३।७ बजेतक	शुक्र	रेवती " १।१३ बजेतक	१५ "	मेषराशि रात्रिमें १।१३ बजेसे, प्रदोषव्रत, वृष संक्रान्ति दिनमें १।४८ बजे, ग्रीष्म-ऋतु प्रारम्भ, पंचक समाप्त रात्रिमें १।१३ बजे।
त्रयोदशी " १२।५४ बजेतक	शनि	अश्विनी " ११।५३ बजेतक	१६ "	भद्रा दिनमें १२।५४ बजेसे रात्रिमें ११।५५ बजेतक, मूल रात्रिमें ११।५३ बजेतक।
चतुर्दशी " १०।५४ बजेतक	रवि	भरणी " १०।५० बजेतक	१७ "	वृषराशि रात्रिमें ४।३९ बजेसे, श्राद्धकी अमावस्या, वटसावित्रीव्रत।
अमावस्या " ९।१४ बजेतक	सोम	कृत्तिका " १०।७ बजेतक	१८ "	सोमवती अमावस्या।

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ७।५६ बजेतक	मंगल	रोहिणी रात्रिमें ९।४८ बजेतक	१९ मई	करवीरव्रत।
द्वितीया " ७।४ बजेतक	बुध	मृगशिरा " ९।५७ बजेतक	२० "	मिथुनराशि दिनमें ९।५३ बजेसे।
तृतीया प्रातः ६।४० बजेतक	गुरु	आर्द्रा " १०।३६ बजेतक	२१ "	भद्रा सायं ६।४४ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, सायन मिथुनका सूर्य सायं ६।२५ बजे।
चतुर्थी " ६।४८ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु " ११।४५ बजेतक	२२ "	भद्रा प्रातः ६।४८ बजेतक, कर्कराशि सायं ५।२८ बजेसे।
पंचमी दिनमें ७।२७ बजेतक	शनि	पुष्य " १।२१ बजेतक	२३ "	मूल रात्रिमें १।२१ बजेसे, श्रीस्कन्दषष्ठीव्रत।
षष्ठी " ८।३४ बजेतक	रवि	आश्लेषा " ३।२६ बजेतक	२४ "	सिंहराशि रात्रिमें ३।२६ बजेसे।
सप्तमी " १०।६ बजेतक	सोम	मघा अहोरात्र	२५ "	भद्रा दिनमें १०।६ बजेसे रात्रिमें ११।२ बजेतक, रोहिणीका सूर्य रात्रिमें १२।३ बजेसे।
अष्टमी " ११।५८ बजेतक	मंगल	मघा प्रातः ५।४८ बजेतक	२६ "	मूल प्रातः ५।४८ बजेतक।
नवमी " १।५९ बजेतक	बुध	पू० फा० दिनमें ८।२२ बजेतक	२७ "	कन्याराशि दिनमें ३।२ बजेसे।
दशमी " ४।० बजेतक	गुरु	उ० फा० " ११।० बजेतक	२८ "	भद्रा रात्रिशेष ४।५५ बजेसे, गंगादशहरा।
एकादशी सायं ५।५१ बजेतक	शुक्र	हस्त " १।२९ बजेतक	२९ "	भद्रा सायं ५।५१ बजेतक, तुलाराशि रात्रिमें २।३६ बजेसे, निर्जला एकादशीव्रत (सबका), भीमसेनी एकादशीव्रत।
द्वादशी रात्रिमें ७।२३ बजेतक	शनि	चित्रा " ३।४२ बजेतक	३० "	श्रीकूर्म-जयन्ती।
त्रयोदशी " ८।२९ बजेतक	रवि	स्वाती सायं " ५।३२ बजेतक	३१ "	प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी " ९।१० बजेतक	सोम	विशाखा " ६।५५ बजेतक	१ जून	भद्रा रात्रिमें ९।१० बजेसे, वृश्चिकराशि दिनमें १२।३४ बजेसे।
पूर्णिमा " ९।१८ बजेतक	मंगल	अनुराधा रात्रिमें ७।४७ बजेतक	२ "	भद्रा दिनमें ९।१४ बजेतक, पूर्णिमा, मूल रात्रिमें ७।४७ बजेसे।

—विष्णुप्रसाद गुप्त

पढ़ो, समझो और करो

(१)

एक मुसलिम बन्धुकी मानवीयता

हमारे देशमें प्रायः धर्म, भाषा, जाति आदिके नामपर झगड़े एवं विवाद होते रहते हैं। उस समय हमारे मनमें यह प्रश्न उठता है कि यदि हम इस प्रकारकी संकीर्ण मानसिकतासे ऊपर उठकर केवल इंसानियतको महत्त्व दें तो ये झगड़े एवं विवाद कभी न हों। वास्तवमें इंसानियत ही वह भावना है, जो मानवको तथा समाजके विभिन्न वर्गोंको परस्पर भाईचारेकी भावनासे जोड़ती है।

मेरे जीवनकी भी एक स्मरणीय घटना है, जो मानवीय भावनाको उजागर करती है। उन सज्जनके प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मेरी परेशानीके समय मेरी सहायता की थी। यह बात सन् १९९०-९१ ई० की है, मैं BHEL हरिद्वारमें सर्विस कर रही थी। मेरी पुत्रीका B.Ed. के लिये खुरजामें सेलेक्शन हो गया था। मुझे उसके एडमिशनके लिये अकेले बेटीके साथ खुरजा जाना पड़ा। मेरे लिये खुरजा बिलकुल अनजाना शहर था। खुरजा पहुँचकर मुझे मालूम हुआ कि बी०एच०ई०एल० की ही दो और लड़कियाँका यहाँ एडमिशन हुआ है। अतः मैं हरिद्वार वापस आनेपर उन बच्चियोंके माता-पितासे मिली। मुझे इस बातकी विशेष खुशी थी कि मेरी बेटीको वहाँ अकेले नहीं रहना पड़ेगा। उनसे मालूम हुआ कि उन लड़कियोंके माता-पिताने रहनेके लिये एक कमरेके मकानका प्रबन्ध कर दिया है, जो उन्हींके किसी परिचितका मकान था। मैंने अपनी पुत्रीके लिये उन्हीं लड़कियोंके साथ रहनेकी व्यवस्था कर दी। तीनों लड़कियोंके एक साथ रहनेसे मैं भी बेफिक्र हो गयी, परंतु दो महीनेमें ही मुझे विदित हुआ कि उन बच्चियोंके पिताने अपने किसी सोर्सद्वारा उनका खुरजासे रुड़की ट्रॉन्सफर करवा लिया है तथा वे दोनों लड़कियाँ शीघ्र ही रुड़की कॉलेज ज्वाइन कर लेगीं। मैं यह जानकर अत्यन्त चिन्तामें पड़ गयी कि मेरी बेटी वहाँ अकेली कमरेमें किस प्रकार रहेगी। मैं दोनों लड़कियोंके पितासे मिली। उन्होंने मुझे खुरजाके एक मुसलिम परिवारसे मिलनेकी सलाह दी। मैं खुरजा जाकर उन सज्जनसे, जो पेशेसे वकील थे, मिली तथा उनको अपनी समस्या बतायी, उन्होंने मुझे एवं मेरी बेटीको अपने श्वसुरजीसे मिलवाया

तथा उन्होंने मेरी सारी बात अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक सुनी। वकील साहबने भी अपने श्वसुरजीसे मेरी बेटीके रुड़की-स्थानान्तरणके सम्बन्धमें विशेष प्रयास करनेके लिये कहा; क्योंकि वकील साहबके श्वसुरजीके रुड़की कॉलेज के रजिस्ट्रारसे काफी घनिष्ठ सम्बन्ध थे। उन्होंने मुझे यह कहकर पूरी तरहसे आश्वस्त किया कि आपकी बेटी मेरी बेटी-जैसी है। आप बिलकुल निश्चिन्त होकर हरिद्वार जाइये। आपकी परिस्थितिसे मुझे पूरी तरह सहानुभूति है। उनके इन सान्त्वनापूर्ण शब्दोंसे आश्वस्त होकर मैं हरिद्वार वापस आ गयी। खुरजासे चलते समय वकीलसाहबने भी मुझे विश्वास दिलाया कि अब आपका कार्य अवश्य हो जायगा।

सच मानिये, अगले १५-२० दिनोंमें मेरी बेटीका रुड़की ट्रॉन्सफरके लिये आर्डर आ गया तथा मेरी बेटीने भी हरिद्वार आकर रुड़की कॉलेज ज्वाइन कर लिया। इस प्रकार उन वकील साहब तथा उनके श्वसुरकी सहायतासे मेरी चिन्ता दूर हुई। आज भी जब मैं याद करती हूँ तो उनके सहानुभूतिपूर्ण शब्द मेरी स्मृतिमें तैरने लगते हैं। उसके बाद मेरा खुरजा कभी जाना नहीं हुआ, न कभी उन सज्जनसे मिलना हुआ, परंतु मैं सदैव उनके प्रति आभारी रहूँगी। वास्तवमें यदि इंसान जाति, धर्म एवं भाषाके भेद-भावकी संकीर्ण मानसिकतासे ऊपर उठकर मानवताको ही सर्वोपरि समझे तो यह धरती स्वर्ग-जैसी हो जाय।—आशा भटनागर

(२)

वह अविस्मरणीय सदाशयता

घटनाको घटे लगभग चौतीस साल बीत गये, पर सरदारजीकी वह सदाशयता आज भी मेरे मानस-पटलसे नहीं उतरती। उस समय मेरी स्थिति उस व्यक्तिके समान थी, जो प्याससे अत्यन्त आकुल होकर भी जिस-तिससे दो घूँट जलकी याचना करनेमें भी संकुचित हो रहा हो और अचानक कोई अपरिचित आकर शीतल जल लाकर कहे—‘महाशय! यह शीतल जल ग्रहण करें।’ यह वह समय था, जब मैं अपने पुत्रको आर्ट्स कॉलेजमें प्रवेश दिलाने अपने गाँवसे ३०० किलोमीटर दूर चण्डीगढ़ गया था। कॉलेज-कार्यालयमें पहुँचकर आवश्यक कागजात

सारे पशु-पक्षी, वृक्ष आदि भी प्रेमके भावको बखूबी समझते हैं। प्रेमको जीवन, परमात्मा, कामधेनु आदि कहा गया है।

तो प्रेमके स्पन्दनोंसे एक कँटीले वृक्षको कंटकहीन बना दिया था, वह पौधेके पास बैठकर उससे कहता प्यारे बच्चे, तुम्हें कुछ भी भय नहीं है। तुम्हें रक्षाके लिये काँटोंकी आवश्यकता नहीं है। तुम बेफिक्र रहो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा, धीरे-धीरे वह रेगिस्तानी पौधा पूर्णतः कंटकहीन हो गया। चैतन्य महाप्रभुका नृत्य-गायन सुनकर वनके पेड़-पौधे जंगली पशुतक झुमने लगते थे।

—गोपालकृष्ण जिन्दल

(8)

कहानी ईमानदारीकी

यह बात सन् १९८४ ई० की है। मेरे साथ दस मित्र माँ वैष्णो देवीके दर्शनके लिये कटरा पहुँचे। कटरामें धर्मशालातक सभीका सामान पहुँचानेके लिये पिट्टू (सामान ढोनेवाले कुली)-से बात करके पैसा तय किया गया। सभी ११ यात्रियोंका सामान धर्मशालापर आ गया।

अब पिटूकी ईमानदारी देखनेका समय था। पिटूने कहा कि मुझे आपलोगोंके बीच ५०० रुपये किसीके गिरे हुए मिले हैं। कृपया आप लोग आपसमें पूछताछ करके पता लगायें कि वे किसके हैं? पता लगनेपर जिसके थे, वापस किये गये। मेरे साथीको खुशी हुई तथा अपनी खुशीसे १०० रुपये ईनामके रूपमें देनेके लिये कहा। पिटूने कहा मैं १०० रुपये नहीं लूँगा। मुझे मातारानी मेहनतका पैसा बहुत देती हैं। आपलोगोंकी सेवा ईमानदारीसे करता रहूँ, मुझे बस, यही चाहिये।

किसीने सच ही कहा है कि 'नीयत हो नेक और मीठी हो जुबां भी, ऐसेमें इबादतकी जरूरत नहीं होती।'—सन्तकुमार मिश्र

(4)

मनका रिश्ता

पर+उपकार अर्थात् दूसरोंके लिये निःस्वार्थ भावसे किया गया कार्य। पर आजके भागते-दौड़ते मशीनी युगमें ये बड़ी बेमानी-सी बात लगती है। आजके व्यस्त जीवनमें स्वयंके साथ ही परिवारकी जिम्मेदारी ही निभालेना बड़ी बात है। तब परोपकारके लिये किसके पास समय है। साथ ही इस तरहके कार्योंको 'मिडिल क्लाॅसकी दकियानुसी' का नाम दिया जायगा।

जीनेमें या दूसरोंके लिये कुछ कर गुजरनेपर एक आत्मिक सुखानुभूति होती है, जिसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है। शब्दोंद्वारा उसको व्यक्त नहीं किया जा सकता।

बात साठके दशककी है। तब मैंने आठ या दस कक्षा पास की होगी। हम छुट्टियोंमें अपने तायाजीके घर जाते थे। संयुक्त परिवारकी गरिमासे परिपूर्णता नज आती थी। वहाँपर मैं मुन्नी बुआ और बसन्ती बुआको हर समय काममें लगे देखती थी। दरअसल ये हमारे दादाजीके गाँवकी थीं और दादाजीने उन्हें अपनी बेटी बना लिया था। बसन्ती बुआ सिलाई करती रहती थी, कभी पेटीकोट तो कभी फ्रॉक। मुन्नी बुआ गेहूँ साफ करतीं, बड़ी-पापड़ बनातीं और आमका खट्टा-मीठा अचार डालतीं। पर इन सब कामोंको करते-करते कभी भी थकान या खीझकी रेखा उनके चेहरेपर नहीं दिखती थी। दोनों ही गाँवके स्कूलमें शिक्षिका थीं, सो छुट्टियोंमें आकर सारा काम अपने कन्धोंपर ले लेती थीं। आर्थिक तंगीके कारण कभी राजगिरके लड्डू या रस्कके पैकेट लाकर, हम बच्चोंको बड़े प्यारसे देती थीं।

शादी-ब्याहके सारी रीति-रिवाजोंको करानेके साथ ही सारी जिम्मेदारीका बोझ अपने कन्धोंपर उठाकर बखूबी कामको सुखद अंजामतक देतीं। सबको अपना बनाकर उनके छोटे-छोटे कामोंकी प्रशंसा करनेकी आदत जो उन दोनोंमें थी, बहुत कम देखनेको मिलती है। वे सदा हरे या नीले किनारेकी सफेद साड़ी पहनती थीं और उनके सिरपर आँचल हमेशा चिपका रहता; मानो फेविकोलसे चिपका दिया गया हो। पर उस सादगीमें एक सौम्यता हमेशा झलकती थी। कोई अपने शाही पहनावे एवं रहन-सहनके कारण मेरु नहीं हो जाता, बल्कि अपने गुणोंसे ही वह महान् बनता है। सच तो यह है कि जहाँ अपनापन महसूस होता है, वहाँ उत्साह अपने-आप ही आ जाता है। उन दोनों मुँहबोली बुआओंने सगी बुआसे ज्यादा अपनापन दिया। वास्तवमें रिश्ता सिर्फ खूनका ही नहीं, मनका भी रिश्ता होता है। मन जिसे अपना मान ले, वह अपना हो जाता है। दादाजीने उन्हें बेटी माना और उन्होंने हमें भतीजियाँ। हर-एकका अपनी जानसे ज्यादा ध्यान रखकर उन्होंने इस रिश्तेको कभी कलंकित नहीं होने दिया।—अपराजिता

मनन करने योग्य

[सत्संगका प्रसाद]

बीसवीं शताब्दीकी घटना है। एक बड़े शहरमें एक बड़े प्रतिष्ठित धनी निवास करते थे। उनके चित्तमें बड़ा वैराग्य था, भगवान्‌के भजनमें बड़ी रुचि थी। वे सोचते रहते थे कि कब वह अवसर मिलेगा, जब सबकी चिन्ता छोड़कर मैं भजनमें ही लग जाऊँगा। उनके संतान नहीं थी। एक भतीजा था, जिसके पढ़ाने-लिखानेकी जिम्मेदारी सेठजीपर ही थी। वे उसको योग्य बनाकर भजनमें लगाना चाहते थे।

कुछ दिनोंमें पढ़-लिखकर सेठजीका भतीजा योग्य हो गया। सेठजीने व्यापारका सारा काम-काज उसे सँभला दिया और अपना विचार प्रकट किया कि मैं तो अब ब्रजमें रहकर भगवान्‌का ही भजन करूँगा। भतीजेने पूछा—‘चाचाजी! इस घरमें, व्यापारमें, रुपयेमें और गणोंमें जो आनन्द है, भजनमें उससे अधिक आनन्द है क्या?’ चाचाजीने कहा—‘इसमें क्या सन्देह है, बेटा! हमारा व्यापार, भोग और सुख तो अत्यन्त अल्प है। संसारके त्रैकालिक सुखोंको और मोक्ष-सुखको भी यदि एकत्र करके एक पलड़ेपर रखा जाय और दूसरे पलड़ेपर भजनका लेशमात्रका सुख रखा जाय, तो भी वह लेशमात्र सुख ही अधिक होगा और तो क्या कहूँ, बेटा! भजनमें जो दुःख होता है, वह भी संसारके सब सुखोंसे श्रेष्ठ है।’ भतीजेने पूछा—‘चाचा! जब भजन में इतना सुख है, तब मुझे इस दुःखरूप व्यापारमें लगाकर आप अकेले क्यों उस सुखका उपभोग करने जा रहे हैं? जिसे आप दुःख समझते हैं, उसमें मुझे डाल रहे हैं और आप सुखमें जा रहे हैं। भला, यह कहाँका न्याय है? मैं भी आपके साथ चलूँगा।’ चाचाजीने कहा—‘बेटा! मैं तो चाहता हूँ कि संसारके सभी लोग भगवान्‌में लग जायँ। मुझे कई बार इस बातका दुःख भी होता है कि लोग ऐसा सुखमय भजन छोड़कर प्रपंचोंमें क्यों फँसते हैं, परंतु संसारका अनुभव किये बिना इसके दुःखोंका ज्ञान

नहीं होता। तुम अभी नवयुवक हो। तुम कुछ दिनोंतक संसारके व्यवहारोंमें रहकर इसके सुख-दुःखोंको देख लो, फिर तुम्हारी रुचि हो तो भजनमें लग जाना।’ भतीजेने कहा—‘चाचाजी! आपकी बात मुझे जँचती नहीं है। मैं सोचता हूँ कि जिस व्यापार आदिमें लगे रहकर आपने अपनी इतनी आयु बितायी है, उसका अनुभव आपसे अधिक मुझे कब होगा। जब आपका अनुभव इतना प्रत्यक्ष है, मेरी आँखोंके सामने है, तब फिर उसका अनुभव प्राप्त करनेके लिये इतना सुखद भजन छोड़ देना कहाँतक उचित है? इसलिये मैं भजनके लिये अवश्य चलूँगा। आप साथ न रखेंगे तो मैं अकेला ही चला जाऊँगा।’

भतीजेका दृढ़ निश्चय देखकर सेठजीको प्रसन्नता हुई। अपनी सारी सम्पत्तिका उन्होंने ट्रस्ट बना दिया, जिससे दीन-दुखियोंकी सेवा हुआ करे। दोनोंने समस्त वस्तुओंका त्याग करके ब्रजकी यात्रा की। रास्तेमें चाचाजीने अपने भतीजेसे बातचीत करते हुए कहा—‘बेटा! ऐसी बात नहीं है कि घरमें भगवान्‌का भजन ही नहीं सकता, हो तो सकता है, होता है। मेरे सामने संसारके व्यवहार, व्यापारमें बहुत बड़ी कठिनाई थी। आजकल व्यापारकी प्रणाली इतनी कलुषित, इतनी गन्दी हो गयी है कि बड़े-बड़े सत्पुरुषोंका व्यवहार भी पूर्णतः शुद्ध नहीं होता। जहाँ दूसरोंसे सम्बन्ध रखना पड़ता है, वहाँ कुछ-न-कुछ उनके सम्बन्धका ध्यान रखना ही पड़ता है। इसलिये कैसा भी सज्जन क्यों न हो, व्यवहारके क्षेत्रमें उसे विवश होकर अपराध करना पड़ सकता है। अवश्य ही यह व्यापारका दोष नहीं है, किंतु कलियुगमें ऐसे व्यक्तियोंकी ही भरमार है। इसीसे जो लोग अपने ईमान और सच्चाईकी रक्षा करना चाहते हैं, अपने अन्तःकरणको शुद्ध रखना चाहते हैं, वे थोड़े-से-थोड़ा व्यापार करते हैं अथवा उससे बिलकुल अलग

गीताप्रेससे प्रकाशित १७ महापुराण

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
1897	श्रीमद्देवीभागवत महापुराण (मतान्तरसे) सटीक		789	संक्षिप्त श्रीशिवपुराण—मोटा टाइप	२००
1898	” ” ” ” ” ” ”	४००	44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०
26,27	श्रीमद्भागवत-महापुराण	५००	1183	संक्षिप्त श्रीनारदपुराण	२००
557	श्रीमत्स्यमहापुराण	२७०	279	संक्षिप्त श्रीस्कन्दपुराण	३२५
48	श्रीविष्णुपुराण	१४०	1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०
1432	श्रीवामनपुराण	१२५	539	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण	९०
1131	श्रीकूर्मपुराण	१४०	1189	संक्षिप्त श्रीगरुडपुराण	१६०
1932	श्रीलिङ्गमहापुराण	२००	1361	संक्षिप्त श्रीवराहपुराण	१००
केवल हिन्दीमें			631	संक्षिप्त श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण	२००
1362	श्रीअग्निपुराण—सम्पूर्ण (श्लोकाङ्कसहित)	२००	584	संक्षिप्त श्रीभविष्यपुराण	१५०

नोट — गीताप्रेससे प्रकाशित संक्षिप्त पुराण सम्पूर्ण पुराणके हिन्दी भाषामें भावानुवाद हैं। केवल कुछ विस्तृत प्रसंगोंको संक्षिप्त किया गया हो सकता है। १८ में ब्रह्माण्डपुराण गीताप्रेससे नहीं छपा है।

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय (सेठजी) श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कुछ लोककल्याणकारी पत्रोंके संग्रह

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके द्वारा अपने परिचितों, मित्रों एवं अन्य लोगोंके लौकिक तथा पारलौकिक समस्याके समाधानके लिये लिखे गये इन पत्रोंके संग्रहमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, चेतावनी, भजन, सत्संग, सेवा आदिकी महत्ताका प्रतिपादन, संसारकी नश्वरता, आत्मज्ञान आदि अनेक कल्याणकारी विषयोंका सुन्दर विवेचन है। ये पत्र कर्तव्य-कर्म एवं परमार्थमार्गका ज्ञान करानेमें सच्चे सहायक हैं।

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
277	उद्धार कैसे हो? (५१ पत्रोंका संग्रह)	१०	281	शिक्षाप्रद पत्र (७० पत्रोंका संग्रह)	१५
278	सच्ची सलाह (८० पत्रोंका संग्रह)	१२	282	पारमार्थिक पत्र (९१ पत्रोंका संग्रह)	१५
280	साधनोपयोगी पत्र (७२ पत्रोंका संग्रह)	१०	284	अध्यात्मविषयक पत्र (५४ पत्रोंका संग्रह)	१२

नित्यलीलालीन (भाईजी) श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके कुछ महत्त्वपूर्ण पत्रोंके संग्रह

श्रद्धेय भाईजीके द्वारा अपने परिचितों तथा मित्रोंको लिखे गये इन पत्रोंके संग्रहमें व्यावहारिक परिष्कार, कर्तव्य, साधन, जप, ध्यान, साधनात्मक समाधान, नाम-निष्ठा, सेवाका रहस्य, दुःखकी निवृत्तिका उपाय, पाप-पुण्यकी परिभाषा आदि विभिन्न विषयोंकी सरल व्याख्या है।

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
353	लोक-परलोक-सुधार—(६८ पत्रोंका संग्रह)	२०	356	शान्ति कैसे मिले?—९४ पत्रोंका संग्रह	२५
354	आनन्दका स्वरूप—६५ पत्रोंका संग्रह	२०	357	दुःख क्यों होते हैं?—८५ पत्रोंका संग्रह	२५
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर—९३ पत्रोंका संग्रह	३०			

अगर किसी पाठकको आध्यात्मिक जिज्ञासा है तो वह इमेल gita.kalyan@yahoo.in पर सम्पर्क कर सकते हैं। कल्याण मासिक पत्रकी सदस्यतासे सम्बन्धित पत्राचार इ-मेल kalyan@gitapress.org पर करें।



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

‘कल्याण’ के ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

‘कल्याण’ वर्ष ८९ (जनवरी २०१५) का विशेषाङ्क—‘सेवा-अङ्क’ हेतु जिन ग्राहकोंसे सदस्यता-शुल्क प्राप्त हुआ उन सभीको उक्त अङ्क रजिस्टर्ड डाकसे प्रेषित किया गया है। जिनका सदस्यता-शुल्क समयपर प्राप्त नहीं हो सका उन्हें वी०पी०पी०से विशेषाङ्क प्रेषित किया गया है। यदि किसीको भी अभीतक विशेषाङ्क प्राप्त नहीं हो पाया है तो उन्हें अपने डाकघरमें जाकर पता लगाना चाहिये। जिन ग्राहकोंको बिना वी०पी०पी० छुड़ाये फरवरी माहका अङ्क प्राप्त हो गया है उनसे निवेदन है कि सदस्यता जारी रखने हेतु सदस्यता-शुल्क शीघ्र भेजना चाहिये। सूचना देकर पुनः वी०पी०से भी मँगाया जा सकता है।

व्यवस्थापक—कल्याण कार्यालय, गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर) (उ० प्र०)

अप्रैल २०१४ से मार्च २०१५ तक प्रकाशित नवीन प्रकाशन

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2019	आदर्श देशभक्त-चित्रकथा	२५	1986	आदर्श-ऋषि-मुनि— ग्रन्थाकार, रंगीन	२५		तेलुगु	
2022	आदर्श सम्राट्	२५				1754	लक्ष्मीसहस्रनाम	६
2026	आदर्श संत	२५	1992	हिन्दी-अंग्रेजी वर्णमाला	३०	985	एक लोटा पानी	२०
2028	आदर्श सुधारक	२५	1993	सचित्र श्रीदुर्गाचालीसा एवं विन्ध्येश्वरीचालीसा (वि०सं०)	१०	1995	अष्टादशशक्ति पीठाल महिमा	१५
2025	गीता हिन्दी-संस्कृत-पाकेट	१५	1985	लिंगमहापुराण—सटीक	२००	986	विदुरनीति	१५
2024	श्रीगणेशस्तोत्ररत्नाकर	३५	2027	भगवत्प्राप्तिकी अमूल्य बातें	१२	987	श्रीदुर्गासप्तशती—सटीक	४०
2021	श्रीपुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्रम्	१०	2002	आध्यात्मिक कहानियाँ	२०	990	कठोपनिषद् शांकरभाष्य	३०
2020	शिवमहापुराण मूलमात्रम्	२५०	2003	शक्तिपीठ-दर्शन	२०		कन्नड़	
1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	१३०	2001	विदुरनीति—अंग्रेजी	२०	1989	श्रीमद्देवीभागवतपुराण	२००
1947	भक्तमाल-अङ्क	१३०		मराठी		1994	शिवमहिम्नस्तोत्र	५
1991	श्रीदुर्गाचालीसा एवं विन्ध्येश्वरीचालीसा लाल रंगमें (विशिष्ट सं०)	५	1983	श्रीरामविजय	१००		तमिल	
				गुजराती		1998	ललितासहस्रनाम	१२
1979	हनुमानचालीसा—सचित्र (विशिष्ट संस्करण)	१०	1987	अच्छे बनो	८	1999	विदुरनीति	१२
1997	„ सचित्र (खड़िआ, लघु) (विशिष्ट संस्करण)	५	1988	कल्याण कैसे हो ?	१५		बँगला	
1990	भगवन्नाम माहात्म्य	१०	2023	जीवनचर्या-विज्ञान	४०	1996	स्तुति	१२५
				असमिया				
			1984	भजगोविन्दम्	३			

भजन-सुधा (पुस्तकाकार) सजिल्द (कोड 1783)—प्रस्तुत पुस्तक ४१९ भजनोंका अनुपम संग्रह है। इसमें गणेश, शिव, भगवान् विष्णु, भगवान् राम, श्रीकृष्ण, देवीके विभिन्न-भजन तथा श्रीहनुमानजीके भजन दिये गये हैं। प्रत्येक देवताके भजनके प्रारम्भमें संस्कृतमें उनके स्तोत्र भी संग्रहीत हैं। विभिन्न रागोंमें निबद्ध प्राचीन एवं अर्वाचीन संतों तथा मारवाड़ी भाषाके विभिन्न भजनोंका यह संग्रह सबके लिये उपयोगी है। मूल्य ₹६०